* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य १० रुपये
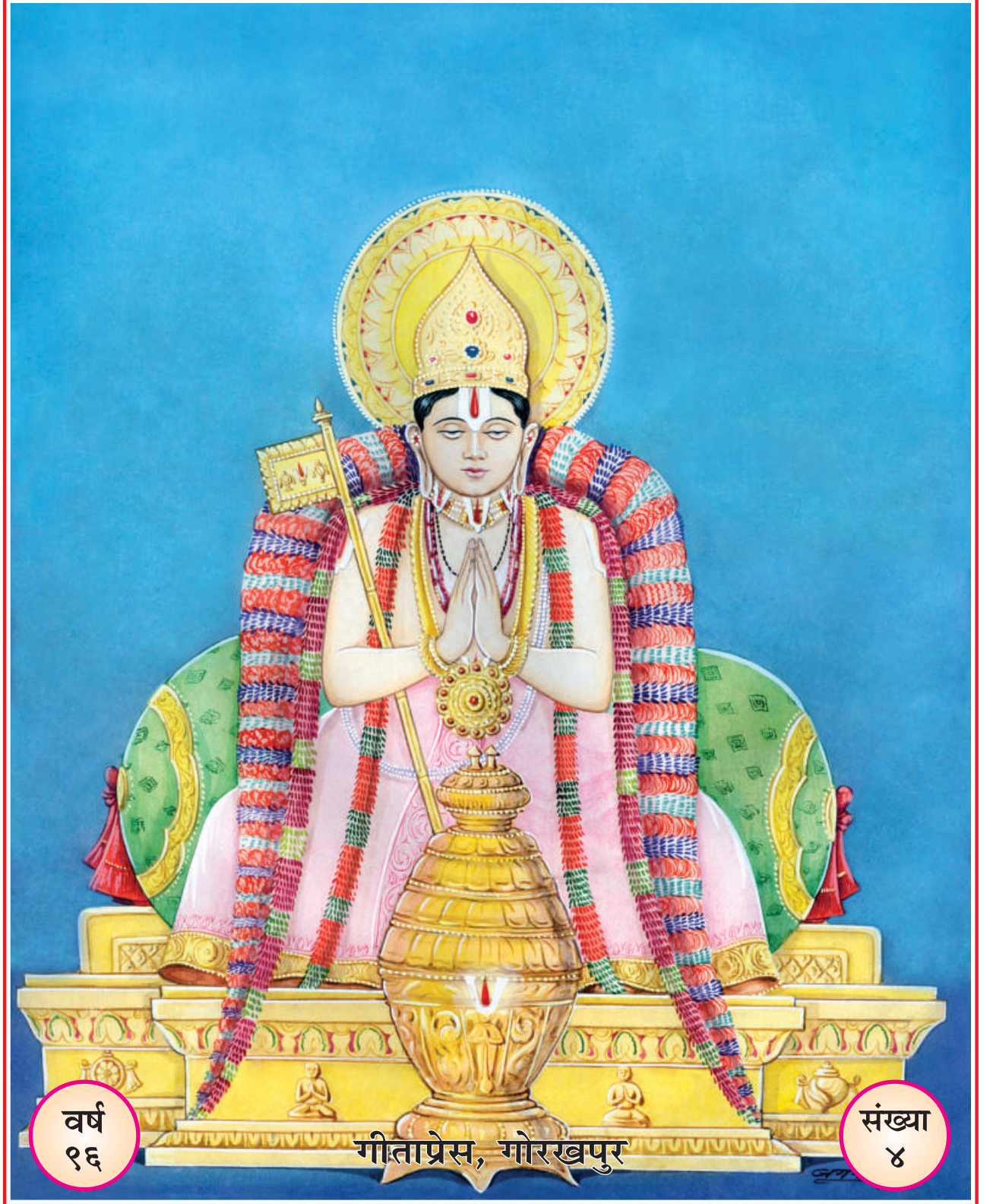
सन्त श्रीरामानुजाचार्यजी
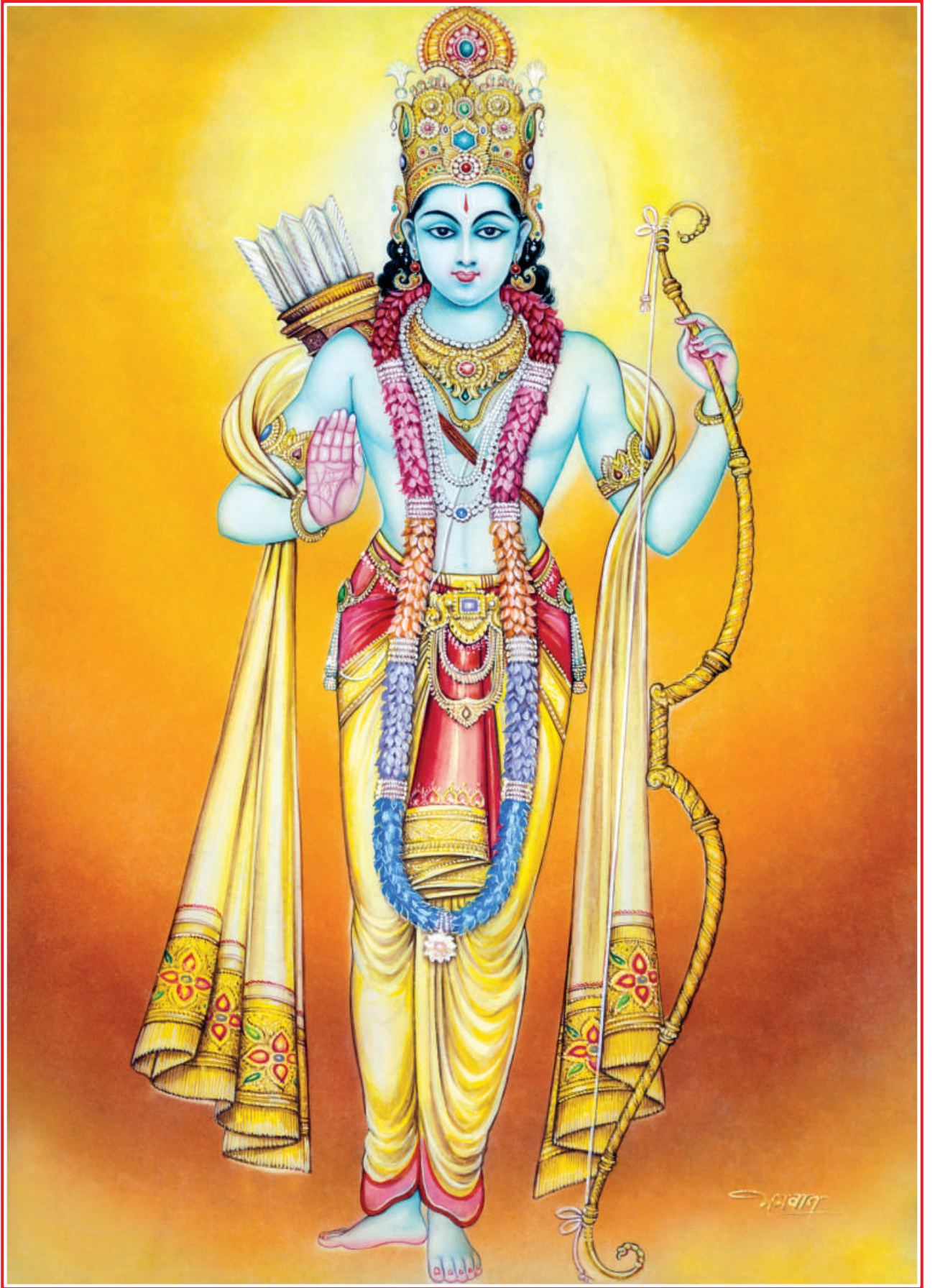
मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

कल्याण

मूक होइ बाचाल पंगु चढ़इ गिरिबर गहन।
जासु कृपाँ सो दयाल द्रवउ सकल कलि मल दहन॥

वर्ष ९६

गोरखपुर, सौर वैशाख, वि० सं० २०७९, श्रीकृष्ण-सं० ५२४८, अप्रैल २०२२ ई०

संख्या ४

पूर्ण संख्या ११४५

मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम

श्रीरामचंद्र कृपालु भजु मन हरण भवभय दारुणं।
नवकंज-लोचन, कंज-मुख, कर-कंज, पद कंजारुणं॥
कंदर्प अगणित अमित छवि, नवनील नीरद सुंदरं।
पट पीत मानहु तड़ित रुचि शुचि नौमि जनक सुतावरं॥
भजु दीनबंधु दिनेश दानव-दैत्य-वंश निकंदनं।
रघुनंद आनँदकंद कोशलचंद दशरथ-नंदनं॥
सिर मुकुट कुंडल तिलक चारु उदारु अंग विभूषणं।
आजानुभुज शर-चाप-धर, संग्राम-जित-खरदूषणं॥
इति वदति तुलसीदास शंकर-शेष-मुनि-मन-रंजनं।
मम हृदय कंज निवास कुरु, कामादि खल-दल-गंजनं॥

[विनय-पत्रिका]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण १,८०,०००)

कल्याण, सौर वैशाख, वि० सं० २०७९, श्रीकृष्ण-सं० ५२४८, अप्रैल २०२२ ई०, वर्ष ९६—अंक ४

विषय-सूची

चित्र-सूची

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय । जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

एकवर्षीय शुल्क ₹ २५०

पंचवर्षीय शुल्क ₹ १२५०

विदेशमें Air Mail शुल्क — वार्षिक US$ 50 (₹ 3,000); पंचवर्षीय US$ 250 (₹ 15,000) — Us Cheque Collection Charges 6$ Extra

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका**

आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**

सम्पादक—**प्रेमप्रकाश लक्कड़**

केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : **gitapress.org** | e-mail : **kalyan@gitapress.org** | ✆ **09235400242 / 244**

सदस्यता-शुल्क —**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।**

Online सदस्यता हेतु gitapress.org पर **Kalyan** या **Kalyan Subscription** option पर click करें।

अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क gitapress.org अथवा **book.gitapress.org** पर नि:शुल्क पढ़ें।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।

॥ श्रीहरिः ॥

हमें मानव शरीर प्राप्त हुआ है, यह प्रभुकी अपार कृपा है। किंतु इस कृपाकी अनुभूति हमें अपनी इच्छाओंके अनन्त जंजालके कारण नहीं हो पाती। यदि विचार करें तो पाँच ज्ञानेन्द्रियों और पाँच कर्मेन्द्रियोंसे युक्त यह हमारा मानव शरीर ऐसा बहुमूल्य यन्त्र है, जिसकी कोई तुलना नहीं हो सकती। एक वैज्ञानिक अध्ययनमें पाया गया है कि यदि मानव मन-मस्तिष्क-जैसी कोई कम्प्यूटर-चालित व्यवस्था बनाना सम्भव भी हो तो उसे स्थापित करनेमें पूरे एक शहर जितनी जगहकी आवश्यकता होगी। अब एक छोटी-सी खोपड़ीमें इतनी व्यवस्था बनाना प्रभुकी कृपाका चमत्कार ही तो है। किंतु हम इस सबके लिये कितनी बार कृतज्ञतापूर्वक प्रभुका स्मरण कर पाते हैं? इसका प्रधान कारण है कि हमें अपनी अतृप्त इच्छाओंके जंजालसे फुरसत ही नहीं मिलती।

अतः हर विवेकशील मनुष्यको अपने पारिवारिक, सामाजिक और व्यावसायिक कर्तव्योंको करते हुए ही बीच-बीचमें भगवान्‌की अहैतुकी कृपाका स्मरण और मन-ही-मन कृतज्ञता-ज्ञापन करते रहना चाहिये—

हरि तुम बहुत अनुग्रह कीन्हों।
साधन धाम बिबुध दुर्लभ तनु मोहि कृपा करि दीन्हों॥

—सम्पादक

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

कल्याण

याद रखो—तुम दूसरोंको जो कुछ दोगे, वही तुम्हें मिलेगा और मिलेगा अनन्तगुना होकर। घृणा, द्वेष, वैर, द्रोह, ईर्ष्या, बुराई अथवा प्रेम, सद्भाव, मैत्री, सहानुभूति, आत्मीयता, भलाई—इनमेंसे कुछ भी देकर देख लो।

याद रखो—तुम यदि यह सोचोगे कि 'अमुक मनुष्यमें यह बुराई है, इतनी बुराई है', तो वह और उतनी ही बुराई तुम उसे दोगे। जिसमें बुराई है, वह दुर्बल है; क्योंकि वह बुराईका नाश करनेमें असमर्थ हो रहा है। और दुर्बलपर ही दूसरेके विचारोंका अधिक प्रभाव पड़ता है। अतएव यदि तुम किसी विकारग्रस्त मनुष्यके साथ घृणा करते हो, उसे बुरा समझते हो, तो वह तुम्हारी दी हुई इन चीजोंको अपनाकर तुमसे और भी घृणा, तुम्हारे साथ और भी बुराई करने लगेगा। यों उसमें बुराई बढ़ जायगी और जिसके पास जो चीज होती है, वह उसीको देता है, इस न्यायसे जो भी उसके सम्पर्कमें आयेगा, उसको उससे वही वस्तु मिलेगी। इससे बुराईका विस्तार हो जायगा।

याद रखो—यदि तुम यह मानते हो कि 'दूसरे किसीमें कोई भी गुण नहीं है, दोष-ही-दोष है', तो तुम भूल करते हो। गुणकी तो बात ही क्या है, वस्तुतः सबमें एकमात्र ईश्वर ही वर्तमान हैं; परंतु तुम्हारी आँखें ईश्वरको न देखकर बुराई और दोष ही देखती हैं, इससे तुम्हें वही चीजें मिलती हैं, ईश्वर नहीं मिलते।

याद रखो—तुम जितना ही दूसरोंको बुरा समझते हो, उतना ही उनके प्रति बुराईके भागी होते हो और उतना ही बुराईका विष बढ़कर तुम्हारे पास लौटता है और वह शूलकी तरह तुम्हारे हृदयमें चुभकर तुम्हारी बुराइयोंको और भी बढ़ा देता है।

याद रखो—यदि तुम अपने मनमें किसीकी बुराई नहीं देखोगे, किसीको अपना वैरी नहीं मानोगे तो शायद ही तुम्हारा कोई वैरी रहेगा; परंतु यदि इसपर भी तुम्हारे प्रति कोई शत्रुता रखे—जिसकी सम्भावना बहुत कम है—बहुत बार तो तुम्हें अपने ही मनके दूषित भावसे दूसरेमें शत्रुपना दिखायी देता है—तो तुम उस शत्रुताका बदला प्रेम, हित और भलाईसे दो। तुम्हारा यह प्रेम, हित और भलाईका व्यवहार उसकी शत्रुताके प्रयत्नको निष्फल कर देगा और परिणाममें उसके मनका शत्रुभाव मित्रभावमें परिणत हो जायगा। यों उसको तुम एक बड़ी विपत्तिसे बचा लोगे और स्वयं तो बचोगे ही।

याद रखो—यदि एक भी मनुष्यको तुमने प्रेम देकर घृणा तथा बुराईके विषसे बचा लिया, उसके मनमें प्रेम भर दिया, तो उसके द्वारा समाजमें घृणा तथा बुराईका विष फैलना बन्द हो जायगा। प्रेमके अमृतका प्रसार होगा और इस प्रकार तुम समाजकी बड़ी सेवा कर सकोगे।

याद रखो—यदि तुमने बुराईका बदला बुराईसे दिया, तो तुमने बुराईकी जलती हुई आगमें घी और ईंधन झोंक दिया। उससे बुराईकी अग्नि और भी भड़क जायगी और चारों ओर फैलकर उसको, तुमको और पास-पड़ोसियोंको ही नहीं; ग्राम, नगर और देशको भी जलानेमें कारण बन जायगी।

याद रखो—यदि तुम प्रेम करोगे—प्रचुर प्रेम करोगे तो बुराईकी, द्वेषकी आगमें पानीकी वर्षा कर दोगे, इससे बुराईकी आग बुझ जायगी। तुम्हारे पास बिखरी हुई—बढ़ी हुई पवित्र प्रेमकी सरिता आयेगी, जो तुम्हारे जीवनको निर्भय, सुखी और शान्त बना देगी। **'शिव'**

आवरणचित्र-परिचय—

शेषावतार भगवान् श्रीरामानुजाचार्य

मध्यकालीन संतोंमें श्रीरामानुजाचार्यका नाम बड़े ही आदरसे लिया जाता है। ये विद्वान्, सदाचारी, धैर्यवान्, सरल एवं उदार थे। ये आचार्य आलवन्दार (यामुनाचार्य)-की परम्परामें थे। इनके पिताका नाम केशवभट्ट था। ये दक्षिणके तिरुकुदूर नामक क्षेत्रमें रहते थे। जब इनकी अवस्था बहुत छोटी थी, तभी इनके पिताका देहान्त हो गया और इन्होंने कांचीमें जाकर गुरुसे वेदाध्ययन किया।

जब महात्मा आलवन्दार मृत्युकी घड़ियाँ गिन रहे थे, उन्होंने अपने शिष्यके द्वारा रामानुजाचार्यको अपने पास बुलवा भेजा। परंतु रामानुजके श्रीरंगम् पहुँचनेके पहले ही आलवन्दार (यामुनाचार्य) भगवान् नारायणके धाममें पहुँच चुके थे। रामानुजने देखा कि श्रीयामुनाचार्यके हाथकी तीन उँगलियाँ मुड़ी हुई हैं। इसका कारण कोई नहीं समझ सका। रामानुज तुरंत ताड़ गये कि यह संकेत मेरे लिये है। उन्होंने यह जान लिया कि श्रीयामुनाचार्य मेरेद्वारा ब्रह्मसूत्र, विष्णुसहस्रनाम और आलवन्दारोंके 'दिव्यप्रबन्धम्' की टीका करवाना चाहते हैं। उन्होंने आलवन्दारके मृत शरीरको प्रणाम किया और कहा—'भगवन्! मुझे आपकी आज्ञा शिरोधार्य है, मैं इन तीनों ग्रन्थोंकी टीका अवश्य लिखूँगा अथवा लिखवाऊँगा।' रामानुजके यह कहते ही आलवन्दारकी तीनों उँगलियाँ सीधी हो गयीं। इसके बाद श्रीरामानुजने आलवन्दारके प्रधान शिष्य पेरियनाम्बिसे विधिपूर्वक वैष्णव-दीक्षा ली और वे भक्तिमार्गमें प्रवृत्त हो गये।

रामानुज गृहस्थ थे; परंतु जब उन्होंने देखा कि गृहस्थीमें रहकर अपने उद्देश्यको पूरा करना कठिन है, तब उन्होंने गृहस्थका परित्याग कर दिया और श्रीरंगम् जाकर यतिराज नामक संन्यासीसे संन्यासकी दीक्षा ले ली।

रामानुजने आलवारोंके भक्तिमार्गका प्रचार करनेके लिये सारे भारतकी यात्रा की और गीता तथा ब्रह्मसूत्रपर भाष्य लिखे। वेदान्तसूत्रोंपर इनका भाष्य 'श्रीभाष्य' के नामसे प्रसिद्ध है और इनका सम्प्रदाय भी 'श्रीसम्प्रदाय' कहलाता है; क्योंकि इस सम्प्रदायकी आद्यप्रवर्तिका श्रीश्रीमहालक्ष्मीजी मानी जाती हैं। यह ग्रन्थ पहले-पहल काश्मीरके विद्वानोंको सुनाया गया था। इनके प्रधान शिष्यका नाम कूरत्तालवार (कूरेश) था। कूरत्तालवारके पराशर और पिल्लन् नामके दो पुत्र थे। रामानुजने पराशरके द्वारा विष्णुसहस्रनामकी और पिल्लन्से 'दिव्यप्रबन्धम्' की टीका लिखवायी। इस प्रकार उन्होंने आलवन्दारकी तीनों इच्छाओंको पूर्ण किया।

श्रीरामानुजने तिरुकोट्टियूरके महात्मा नाम्बिसे अष्टाक्षर मन्त्र (**ॐ नमो नारायणाय**)-की दीक्षा ली थी। नाम्बिने मन्त्र देते समय इनसे कहा था कि 'तुम इस मन्त्रको गुप्त रखना।' परंतु रामानुजने सभी वर्णके लोगोंको एकत्रकर मन्दिरके शिखरपर खड़े होकर सब लोगोंको वह मन्त्र सुना दिया। गुरुने जब रामानुजकी इस धृष्टताका हाल सुना, तब वे इनपर बड़े रुष्ट हुए और कहने लगे—'तुम्हें इस अपराधके बदले नरक भोगना पड़ेगा।' श्रीरामानुजने इसपर बड़े विनयपूर्वक कहा कि 'भगवन्! यदि इस महामन्त्रका उच्चारण करके हजारों आदमी नरककी यन्त्रणासे बच सकते हैं तो मुझे नरक भोगनेमें आनन्द ही मिलेगा।' रामानुजके इस उत्तरसे गुरुका क्रोध जाता रहा, उन्होंने बड़े प्रेमसे इन्हें गले लगाया और आशीर्वाद दिया। इस प्रकार रामानुजने अपनी समदर्शिता और उदारताका परिचय दिया।

श्रीरामानुजाचार्यजी (१०१७—११३७ ई०)-के जन्मकी सहस्राब्दीके उपलक्ष्यमें हैदराबादके मुचिन्तल नामक स्थानपर चिन्ना जीयर ट्रस्टद्वारा १००० करोड़की लागतमें उनकी २१६ फुट ऊँची पंचधातुसे निर्मित 'स्टैच्यू ऑफ इक्वलिटी' (समताकी प्रतिमा)-का अनावरण गत बसन्तपंचमी (५ फरवरी, २०२२ ई०)-को माननीय प्रधानमन्त्री श्रीनरेन्द्र मोदीजीद्वारा किया गया। यह प्रतिमा स्वयंमें अद्वितीय, मनमोहक एवं दर्शनीय है।

अनमोल वचन—

जीवन-निर्माणकी बातें

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

❀ जो स्वावलम्बी नहीं होते, जिनका जीवन-निर्वाह दूसरोंकी कमाईसे होता है, जो दूसरोंके द्वारा रक्षित होकर जीवन धारण करते हैं, वे अपने विचारोंकी उन्नति नहीं कर सकते। उन्हें अपने आश्रयदाताके विचारोंके आगे दबना पड़ता है। कभी-कभी तो अपने सद्विचारोंकी हत्यातक करनी पड़ती है। विचारोंके दबते-दबते नवीन सद्विचारोंकी सृष्टि होनी रुक जाती है, शरीरकी भाँति उनकी बुद्धि और उनका विवेक भी परमुखापेक्षी बन जाते हैं। अतएव यथासम्भव स्वावलम्बी बननेकी चेष्टा करनी चाहिये।

❀ आजके कामको कलपर छोड़ना। काम करनेमें दिलको लगाना ही नहीं—यह बहुत ही बुरी आदत है। इस आदतके वशमें रहनेवाले मनुष्यका इस लोक या परलोकमें उन्नत होना अत्यन्त ही कठिन है। समय बहुत थोड़ा है, मार्ग दूर है। मृत्यु प्राप्त होने और शरीरपर रोगोंका आक्रमण होनेसे पहले ही तत्पर होकर कर्तव्य-पालनमें लग जाना चाहिये। प्रत्येक सत्कार्यकी प्राप्ति होते ही उत्साहके साथ उसी समय उसे सम्पन्न करनेके लिये प्रस्तुत हो जाना चाहिये।

❀ बड़े-बूढ़े अनुभवी गुरुजनोंकी स्नेहभरी आज्ञाकी अवहेलना करते रहनेसे सन्मार्गपर प्रवृत्त होनेमें बड़ी बाधा होती है। गुरुजनोंके आशीर्वादसे आयु, विद्या, यश और बलकी वृद्धि होती है। उनके अनुभवपूर्ण वाक्योंसे हमें जीवन-निर्वाहका मार्ग सूझता है, अतएव यथासाध्य गुरुजनोंकी आज्ञाका पालन करनेमें तत्पर होना चाहिये।

❀ परायी निन्दा-स्तुति या व्यर्थ चर्चा मनुष्यको बहुत ही मीठी लगती है, जिसमें पर-निन्दा और पर-चर्चा तो सबसे बढ़कर प्यारी है। निन्दा-स्तुति और पर-चर्चामें असत्य, द्वेष और दम्भको बहुत गुंजाइश मिल जाती है। अतएव निन्दा या व्यर्थ चर्चा तो कभी नहीं करनी चाहिये। स्वार्थ-सिद्धिके लिये स्तुति करना भी बहुत बुरा है। बिना हुए ही स्वार्थवश किसीके अधिक गुणोंका बखान करना उसको ठगना है। योग्यता प्राप्त होनेपर यथार्थ शब्दोंमें स्तुति करनेपर कर्ताके लिये कोई हानि नहीं है।

❀ यद्यपि प्रमादी और विषयासक्त पुरुषोंकी अपेक्षा मान-बड़ाई-प्रतिष्ठाके लिये भी अच्छे कर्म करनेवाले उत्तम हैं, तथापि आत्माके कल्याण चाहनेवालोंकी तो मान-बड़ाईसे बड़ी हानि हो सकती है, उनका वह सब साधन मान-बड़ाईमें चला जाता है। यह बड़ी भयानक, गम्भीर और संक्रामक व्याधि है, जो हृदयके अन्तस्तलमें छिपी रहती है।

❀ हमलोगोंने अपनेसे अधिक धनवानोंकी देखादेखी अपने दैनिक खर्च, खाने-पहननेका खर्च, ब्याह-शादीका खर्च इतना बढ़ा लिया है कि जिसके कारण आज हमारा जीवन महान् दुखी और अशान्त बन गया है। इसीलिये आज हम धन कमानेके किसी भी साधनको अनुचित नहीं समझते। चाहे जैसे भी हो धर्म जाय, न्यायका नाश हो, देश या जाति या पड़ोसी भाइयोंका दुःख बढ़ जाय, हमें धन मिलना चाहिये। इस न्यायान्यायशून्य धन-लोलुपताकी इतनी वृद्धिमें अनावश्यक व्यय एक प्रधान कारण है।

❀ धनलोलुप लोग परमार्थके साधन या आत्मोन्नतिके कार्यमें सहजमें नहीं लग सकते। अतएव मनुष्यको चाहिये कि यथासाध्य अपनी आवश्यकताओंको घटाये। जितना अधिक कम खर्चमें जीवन-निर्वाह हो, उतना ही कम खर्च करे, धन ज्यादा हो तो उसका उपयोग गरीब, निर्धन, अपाहिज भाई-बहनोंकी सेवामें करे।

❀ विचारवान् पुरुषोंने लोभको पापका जन्मदाता बताया है। लोभवृत्ति जागनेपर न्यायान्याय और सत्यासत्यका विचार नहीं ठहर सकता। दूसरोंको धोखा देना, ठगना, धनके लिये नीच-से-नीच कर्म कर बैठना लोभी मनुष्यका स्वभाव-सा बन जाता है।

हमारे आन्तरिक शत्रु—

जब अपवित्र विचार घेरते हैं!

[काम, कारण और निवारण]

(श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)

'ब्रह्मचर्येण देवा मृत्युमुपाघ्नत।'

ब्रह्मचर्यसे क्या नहीं हो सकता?

उससे मृत्युपर विजय प्राप्त की जा सकती है।

जीवनमें सर्वत्र सफलता प्राप्त की जा सकती है।

उससे स्वास्थ्यकी प्राप्ति होती है।

बलकी वृद्धि होती है।

ओजकी प्राप्ति होती है।

× × ×

कौन नहीं जानता ब्रह्मचर्यसे होनेवाले लाभोंको?

फिर भी हम ब्रह्मचर्यके पालनके लिये सचेष्ट नहीं होते। उसकी रक्षाके लिये प्रयत्नशील नहीं होते।

महज इसलिये कि विषयोंमें हमने सुखकी, आनन्दकी कल्पना जो कर रखी है।

गीताका यह उपदेश हमने सर्वथा भुला दिया है—

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥

(५। २२)

स्पर्शसे, विषयोंसे, इन्द्रियोंके संयोगसे प्राप्त होनेवाले भोग दुःखके ही हेतु हैं। आदि और अन्तवाले हैं, अनित्य हैं। बुद्धिमान् पुरुष उनमें नहीं रमते।

पर, यहाँ तो कुएँमें भाँग जो पड़ी है।

× × ×

हमने बुद्धिको उठाकर ताकपर रख दिया है।

जानते हैं, विषयोंमें क्षणभरके लिये दाद खुजलानेका आनन्द मिलता है और जिन्दगीभरके लिये मुसीबतमें फँस जाना पड़ता है, रोग-बीमारी, झंझट-परेशानी, दुःख-क्लेश, कलह-अशान्ति सदाके लिये घेर लेती है, फिर भी हम हैं कि मानते ही नहीं!

× × ×

दुःखोंको हम जान-बूझकर आमन्त्रित करते हैं।

ठोंक-बजाकर मुसीबत मोल लेते हैं।

और जब, दुःखों और कष्टोंमें फँस जाते हैं तो रोते हैं, सिर धुनते हैं और हाथ मलते हैं।

पर—

तब पछिताये होत का, जब चिड़िया चुग गयी खेत।

माखी बैठी शहदपर पंख गये लपिटाय।
हाथ मले अरु सिर धुने लालच बुरी बलाय॥

× × ×

जरूरत है कि हम शुरूसे सचेत रहें।

क्षणिक सुखोंके प्रलोभनसे अपनेको रोकें।

इन्द्रियाँ जैसे ही भटकनेके लिये आतुर हों, वैसे ही उनपर 'ब्रेक' लगा दें।

कछुएकी तरह जरा-सा खटका होते ही, संकटकी जरा-सी आशंका होते ही हम शरीरको समेट लें!

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥

(गीता २। ५८)

× × ×

सभी इन्द्रियोंके विषयोंमें हमें सावधान होना पड़ेगा।

जरा ढील दी कि गये!

× × ×

अपवित्र विचार आता है, बढ़ता-पनपता है, पुष्पित-पल्लवित होता है, भोग्य प्राणीके प्रति आकर्षण इतना अधिक बढ़ जाता है कि मानवकी बुद्धि दिवाला बोल जाती है। वह रोक नहीं पाता अपने आपको।

इन्द्रियाँ उत्तेजित हो उठती हैं। स्पर्शकी, भोगकी आकुलता इतनी बढ़ती है कि उसकी समाप्ति होती है वीर्य और रजके स्खलनमें।

और, यह वीर्य और रज क्या है?

यह है वह अलभ्य पदार्थ, जिससे प्रजोत्पत्ति होती है।

पुरुषका चेहरा इसीसे दमकता है।

इसीसे उसके रोम-रोममें स्फूर्ति रहती है।

यही उसका बल है, यही उसकी शक्ति है, यही उसका ओजस् है।

नारीका लावण्य, उसकी लोनाई, उसका नमक, उसका सलोनापन यही है।

सृष्टिका चक्र इसीसे चलता है।

माताओंकी गोद इसीसे हरी-भरी होती है।

आँगनकी खिलखिलाहटका रहस्य इसीमें छिपा हुआ है।

× × ×

वीर्य ही वह संजीवनी शक्ति है, जिसपर मानवके शरीरका सारा ढाँचा खड़ा है।

आयुर्वेद कहता है कि रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और वीर्य—ये सात धातुएँ स्वयं स्थित रहकर मानव-शरीरको धारण करती हैं।

एते सप्त स्वयं स्थित्वा देहं दधति यन्नृणाम्।
रसासृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणि धातवः॥

× × ×

जानते हैं, वीर्य कितनी मूल्यवान् वस्तु है?

सुश्रुतमें उसकी व्याख्या की गयी है—

रसाद्रक्तं ततो मांसं मांसान्मेदः प्रजायते।
मेदसोऽस्थि ततो मज्जा मज्जायाः शुक्रसम्भवः॥

हम जो भोजन करते हैं, उससे सबसे पहले रस बनता है। कूड़ा मल-मूत्र-पसीना आदिके रूपमें बाहर निकल जाता है।

रससे रक्त बनता है।

रक्तसे मांस बनता है।

मांससे मेद और मेदसे अस्थि बनती है।

अस्थिसे मज्जा बनती है।

मज्जासे वीर्य बनता है।

× × ×

एक धातुसे दूसरी धातु बननेमें ५ दिन लगते हैं।

६ धातुओंके बननेमें ६×५=३० दिन लगते हैं।

अर्थात् हम आज जो खायेंगे, वह एक महीने बाद वीर्यका रूप धारण करेगा।

सो भी किस हिसाबसे?

पक्का १मन=४० सेर भोजन=१ सेर रक्त=२ तोला वीर्य!

हम रोज यदि १ सेर भोजन करें, तो तीस दिनमें मुश्किलसे डेढ़ तोला वीर्य तैयार होगा।

× × ×

जो वीर्य इतना मूल्यवान् है, उसीकी बर्बादीमें हम कैसे शाहखर्च हैं, सोचकर आश्चर्य होता है!

एक बारके सहवासमें डेढ़ तोलेसे कम वीर्यका क्षरण नहीं होता।

मतलब, एक बारके सम्भोगमें महीनेभरकी कमाई गोल!

× × ×

बापूके शब्दोंमें हम पलभरके लिये भी नहीं सोचते कि 'क्षणिक रसके लिये मैं क्यों तेजहीन होऊँ? जिस वीर्यमें प्रजोत्पत्तिकी शक्ति भरी हुई है, उसका पतन क्यों होने दूँ? और इस तरह ईश्वरकी दी हुई बख्शीशका दुरुपयोग करके मैं ईश्वरका चोर क्यों बनूँ? जिस वीर्यका संग्रहकर मैं वीर्यवान् बन सकता हूँ, उसका पतन करके वीर्यहीन क्यों बनूँ?'

× × ×

कहा गया है—

मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बिन्दुधारणात्।

मक्खन निकालनेके लिये जिस तरह दूध मथा जाता है, ईखसे रस निकालनेके लिये जिस तरह ईखको निचोड़ना पड़ता है, उसी तरह विन्दुपातके लिये सारे शरीरको मथ डाला जाता है!

तभी तो वीर्यके क्षरणके उपरान्त शरीरकी सभी नस-नाड़ियाँ शिथिल हो जाती हैं। लगता है शरीरमें अब कोई दम नहीं रह गया है।

चाणक्यने इसीलिये लिखा है—

पुराणान्ते श्मशानान्ते मैथुनान्ते च या मतिः।
सा मतिः सर्वदा चेत् स्यात् को न मुच्येत बन्धनात्॥

'पुराण सुननेके बाद, श्मशानसे लौटनेके बाद और मैथुन करनेके उपरान्त जो बुद्धि रहती है,

वह यदि सदैव बनी रहे, तो कौन न बन्धनसे मुक्त हो जाय!'

× × ×

विषयवासनासे हमारी अक्लपर पर्दा पड़ जाता है। तभी न हम बार-बार गिरकर और पछता-पछताकर फिर भी गिरते ही चले जाते हैं।

× × ×

आज हमारा राष्ट्र इतना दुर्बल है, अशक्त है, कमजोर है, क्षय-जैसे भयंकर रोगोंका शिकार है, क्यों?

जवानीमें ही हमारी आँखें गढ़ोंमें धँस जाती हैं, गाल पिचक जाते हैं, युवतियाँ एकाध बच्चेको ही जन्म देनेके बाद वृद्धा बन जाती हैं, बच्चे अकाल ही कालके गालमें समा जाते हैं—इसका कारण क्या है?

यही कि हम वासनाके कीड़े बन गये हैं। भोग-विलासके पीछे दीवाने बने घूमते हैं। वीर्यनाशके नाना उपायोंद्वारा अपनेको निचोड़ डालनेमें ही हमने अपने जीवनकी सार्थकता मान ली है। क्षणिक सुखके लिये अपना सर्वनाश करनेमें ही हमें 'मज़ा' आता है!

और, यह 'मज़ा' ही हमें ले डूबता है।

नतीजा सामने है।

हमारा स्वास्थ्य चौपट हो रहा है, हमारा चरित्र स्वाहा हो रहा है, धन नष्ट हो रहा है और हम विवश हो रहे हैं—कीड़ों-मकोड़ोंसे भी गया-गुजरा जीवन बितानेके लिये!

× × ×

इसीसे बचानेके लिये हमारे शास्त्रोंमें ब्रह्मचर्य-पालनपर इतना जोर दिया गया है। अष्ट प्रकारके मैथुनसे बचनेके लिये इसीलिये कहा गया है कि उसीमें मानवजातिका कल्याण निहित है। उसका विवेचन भी कितना सूक्ष्म है, देखिये—

स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्।
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिष्पत्तिरेव च॥

स्मरण—पतनकी पहली सीढ़ी है—अपवित्र स्मरण। कामका चिन्तन, गन्दी बातोंका स्मरण जहाँ किया कि पापका पथ प्रशस्त हुआ। पतनकी शुरुआत यहींसे होती है।

कीर्तन—गन्दे विषयोंकी चर्चा करना, मुखसे गन्दी अश्लील बातें निकालना, विकारोत्तेजक गीत गाना, गन्दा अश्लील साहित्य पढ़ना, विषयवार्तामें रस लेना भी पतनका एक प्रकार है।

केलि—कामवासनासे केलि (क्रीड़ा) करना, हँसना, गुदगुदाना, अंगोंका स्पर्श करना, ताश-चौपड़ आदि खेलना भी पतनका एक प्रकार है।

प्रेक्षण—कामासक्त होकर किसीको टेढ़ी-तिरछी नजरोंसे देखना, किसीको अस्त-व्यस्त रूपमें, नग्न अथवा अर्धनग्न-अवस्थामें, स्नान करते हुए, बाल झाड़ते हुए देखना, गन्दे चित्र, नाटक, सिनेमा, नौटंकी आदि देखना, उसमें रस लेना भी पतनका एक प्रकार है।

गुह्यभाषण—एकान्तमें, पतनविषयक गुप्त और रहस्यपूर्ण बातें करना भी पतनका एक प्रकार है।

संकल्प—अपवित्र संकल्प करना, कामवासना चरितार्थ करनेका विचार करना भी पतनका एक प्रकार है।

अध्यवसाय—पतनके लिये प्रयत्नशील होना, उसके लिये आगे बढ़ना, वासनापूर्तिके लिये भाँति-भाँतिकी चेष्टाएँ करना भी पतनका एक प्रकार है।

क्रियानिष्पत्ति—इन्द्रियोंके हाथका खिलौना बनकर पतनके गड़हेमें गिर जाना पतनकी पराकाष्ठा है। पिछले सभी प्रकारोंकी अन्तिम परिणति इसीमें होती है।

× × ×

पुरुष हो या स्त्री, युवक हो या युवती, किशोर हो या किशोरी—जो भी व्यक्ति पतनके इन आठ प्रकारोंमेंसे एक भी प्रकारमें रस लेता है, वह अपने पतनका पथ प्रशस्त करता है।

ये सभी साधन गिरानेवाले हैं, वीर्यनाश करनेवाले हैं। इनसे शक्तिका क्षय होता है, रोग और बीमारियाँ पनपती हैं, शरीर खोखला होता है, धन-सम्पत्ति नष्ट होती है, स्वास्थ्य चौपट होता है, चरित्र स्वाहा होता है, सम्मान जाता है, अपमान और तिरस्कार होता है।

इनसे व्यक्तिका पतन होता है, समाजका पतन होता है, राष्ट्रका पतन होता है।

और क्या नहीं होता?

कामवासनाके चलते कितना नहीं जलील होना पड़ता मानवको!

× × ×

और कहीं छुटकारा भी है इस बलासे?

घर तो घर, बाहर सड़कपर, मैदानमें, बाग-बगीचेमें, यहाँतक कि जेलमें भी वह हमारा साथ नहीं छोड़ती!

कैद जिंदा में न छोड़ा साथ,
नफ्स मूज़ी भी बड़ा बदज़ात है!

× × ×

आज तो हमारे चारों ओर भोग-विलासका ही गन्दा पनाला बह रहा है। जिधर देखिये अपवित्र वातावरण, अपवित्र क्रियाकलाप, अपवित्र वार्ता, अपवित्र साहित्य, अपवित्र मनोविनोद। सर्वत्र दूषित विकारोंकी ही आराधना! पतनके न जाने कितने घृणित मार्ग खोज निकाले हैं हमने!

तभी तो मर्यादित सहवासकी बात हमें काटती है। वह हमें असम्भव-सी लगती है। घरकी मर्दुमशुमारी बढ़ते देख, बच्चोंके लालन-पालनमें अपनी असमर्थता देख हम सन्तति-निग्रहके बनावटी उपायोंकी ओर बेतहाश दौड़ रहे हैं!

वासनापर काबू करना हमसे पार नहीं लगता, पर उसके कटु परिणामोंसे बचनेके लिये, बच्चोंसे अपना पिण्ड छुड़ानेके लिये, जिम्मेदारियोंसे बचनेके लिये हम जमीन-आसमानके कुलावे एकमें मिला रहे हैं।

कैसा घृणित है हमारा यह सारा आयोजन!

× × ×

हमारा मनोविज्ञान आगमें घीका काम कर रहा है!

वह कहता है—भोगोंकी इच्छाओंको जबरन् दबाना ठीक नहीं। उससे मानसिक रोग पनपते हैं। हीनताकी भावना आती है। स्नायुदौर्बल्य आता है। मानवके विकासका रास्ता रुक जाता है। हृदयमें ऐसी ग्रन्थियाँ पड़ जाती हैं कि मानव झेंपने लगता है, शर्माने लगता है। काम करनेकी उसकी स्फूर्ति मारी जाती है। ऐसी एक नहीं, अनेक बातें!

× × ×

ऐसा नहीं कि मनोविज्ञानकी ये सब बातें बिना तथ्यकी हों।

उसने अनेक प्रयोग करके दिखा दिया है कि अवदमित वासनाएँ ही विभिन्न विकृत रूपोंमें हमारे समक्ष उपस्थित होती हैं।

× × ×

यह मनोविज्ञान भोगोंको इतना भोगनेकी छूट देता है कि भोगते-भोगते उनसे अरुचि हो जाय।

परंतु क्या ऐसा सम्भव है?

हम तो यही समझते हैं कि—

'बुझै न काम अगिनि 'तुलसी' कहुँ, बिषय-भोग बहु घी ते।'

× × ×

कहते हैं कि स्वामी रामतीर्थ ध्यान करने बैठते तो उनके ध्यानमें सेव आ जाता।

बड़े हैरान। जब देखो तब सेव!

एक दिन वे बाजारसे एक सेव ले आये और उसे रख दिया अपने सामनेवाले ताखमें।

शीघ्र बिगड़नेवाला फल धीरे-धीरे उसका रंग-रूप विकृत होने लगा।

कुछ दिनोंमें वह सड़ गया। बदबू आने लगी उससे।

तब स्वामी रामने उसे उठाकर फेंक दिया।

फिर कभी सेव उनके ध्यानमें नहीं आया।

× × ×

भोगोंको भोगकर उनसे अरुचि हो जानेकी बात सबपर लागू नहीं हो सकती।

हो भी तो सबलोग मनोऽनुकूल भोग पा कहाँसे सकेंगे?

अजी, सबकी बात तो छोड़िये, ययातिके अनुसार,

सारे संसारकी सम्पत्ति, सारे संसारकी सुन्दरियाँ एक व्यक्तिके पास लाकर जुटा दी जायँ, फिर भी यह कहना कठिन है कि उस व्यक्तिकी तृप्ति हो जायगी।

× × ×

पैर कब्रमें लटक रहे हैं, शरीर जर्जर है, हाथ उठते नहीं, आँखोंसे सूझता नहीं, कानोंसे ठीक सुन नहीं पड़ता, सभी अंग जवाब दे चुके हैं—ऐसे वृद्धोंमें भी विकार जाग्रत् होते देखा गया है! जिन्दगीभर भोग भोग चुके हैं, फिर भी उनसे अरुचिका कोई नाम नहीं! सुलभ हो और मकरध्वज तथा तिलामस्ताना उनकी नसोंमें रवानी ला सके, तो वे उसका भी उपभोग करनेसे नहीं चूकेंगे।

मुसकराकर कह उठेंगे—'शरीर बूढ़ा हो गया तो क्या दिल भी बूढ़ा हो गया!'

लाख कोई समझाये—

'कदम सूए मरकद नजर सूए दुनिया,
कहाँ जा रहे हो, किधर देखते हो!'

हमपर कोई असर होनेवाला नहीं।

× × ×

मतलब, जबतक विषयोंमें आसक्ति बनी है, भोगोंकी वासना जीवित है, तबतक बूढ़ा हो या जवान, अपवित्र विचार घेरेंगे ही।

× × ×

माथा मुड़ा लेनेसे, कपड़े रँग लेनेसे, घर-बार छोड़ देनेसे, परिग्रहसे छुटकारा ले लेनेसे, धर्मोपदेशक, कथावाचक, साधु-संन्यासी, मुल्ला-पादरीका चोगा पहन लेनेसे विषयोंकी वासना जाती रहेगी—ऐसा सोचना भी गलत है।

'मन न रँगाये, रँगाये जोगी कपड़ा!'—वाली स्थिति जबतक बनी है, तबतक पतनका खतरा बना ही रहेगा।

× × ×

विनोबाने ठीक ही कहा है—

'कोई यदि गुफामें जाकर बैठ जाय, तो भी उसकी बित्तेभर लंगोटीमें संसार ओत-प्रोत (भरा) रहता है। यह लंगोटी उसकी ममताका सार-सर्वस्व बन बैठती है। जैसे छोटेसे नोटमें हजार रुपये भरे रहते हैं, वैसे ही उस छोटी-सी लंगोटीमें भी अपार आसक्ति भरी रहती है। चाहे घरमें रहो या जंगलमें, आसक्ति तो पास ही बनी रहती है।'

जरूरत है इस आसक्तिको मिटानेकी।

फिर चाहे घरमें रहो, चाहे वनमें, गृहस्थ रहो या संन्यासी—सब ठीक है।

अपवित्र विचार तभीतक आते हैं, जबतक यह आसक्ति बनी हुई है। यह मिट जाय तो अपवित्र विचार आ ही नहीं सकते।

× × ×

अपवित्र विचारोंसे मुक्त होनेके लिये, जीवन और जगत्में सफलता पानेके लिये, सुखी और स्वस्थ रहनेके लिये अपना, राष्ट्रका और विश्वका कल्याण करनेके लिये हमें अपने स्वेच्छाचारपर रोक लगानी होगी और ब्रह्मचर्यका व्रत लेकर पूरी सावधानीसे उसका पालन करना होगा।

× × ×

ब्रह्मचर्यका पालन करनेमें हम इसीलिये असमर्थ रहते हैं कि हम हृदयसे उसका पालन नहीं करना चाहते। हम चाहें तो क्या नहीं कर सकते?

बापूने ठीक लिखा है—

'व्रत बन्धन नहीं, स्वतन्त्रताका द्वार है। व्रतसे अपनेको बाँधना मानो व्यभिचारसे छूटकर एक पत्नीसे सम्बन्ध रखना है। 'मेरा तो विश्वास प्रयत्नमें है। व्रतके द्वारा मैं बँधना नहीं चाहता—यह वचन निर्बलतासूचक है। इसमें छिपे-छिपे भोगकी इच्छा रहती है। जो वस्तु त्याज्य है, उसे सर्वथा छोड़ देनेमें कौन-सी हानि हो सकती है? जो साँप मुझे डँसनेवाला है, उसे मैं निश्चयपूर्वक हटा देता हूँ, हटानेकी केवल चेष्टा ही नहीं करता; क्योंकि मैं जानता हूँ कि महज प्रयत्नका परिणाम होनेवाला है—मृत्यु।'

ब्रह्मचर्यका व्रत लिया नहीं, कि अपवित्र विचारोंसे छुटकारा मिला।

श्रीरामनवमी

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

श्रीरामनवमी सारे जगत‍्के लिये सौभाग्यका दिन है; क्योंकि अखिल विश्वपति सच्चिदानन्दघन श्रीभगवान् इसी दिन दुर्दान्त रावणके अत्याचारसे पीड़ित पृथ्वीको सुखी करने और सनातन-धर्मकी मर्यादा-स्थापन करनेके लिये मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामके रूपमें प्रकट हुए थे। श्रीराम केवल हिन्दुओंके ही 'राम' नहीं हैं, वे अखिल विश्वके प्राणाराम हैं। भगवान् श्रीराम और भगवान् श्रीकृष्णको केवल हिन्दूजातिकी सम्पत्ति मानना उनके गुणोंको घटाना है, असीमको सीमाबद्ध करना है। विश्वचराचरमें आत्मरूपसे नित्य रमण करनेवाले और स्वयं ही विश्व-चराचरके रूपमें प्रतिभासित सर्वव्यापी सर्वान्तर्यामी सर्वरूप नारायण किसी एक देश या व्यक्तिकी ही वस्तु कैसे हो सकते हैं? वे सबके हैं, सबमें हैं, सबके साथ सदा संयुक्त हैं और सर्वमय हैं। जो कोई भी जीव उनकी आदर्श मर्यादालीला—उनके पुण्यचरित्रका श्रद्धापूर्वक गान, श्रवण और अनुकरण करता है, वही पवित्र-हृदय होकर परम सुखको प्राप्त कर सकता है। श्रीरामके समान आदर्श पुरुष, आदर्श धर्मात्मा, आदर्श नरपति, आदर्श मित्र, आदर्श भाई, आदर्श पुत्र, आदर्श गुरु, आदर्श शिष्य, आदर्श पति, आदर्श स्वामी, आदर्श सेवक, आदर्श वीर, आदर्श दयालु, आदर्श शरणागत-वत्सल, आदर्श तपस्वी, आदर्श सत्यवादी, आदर्श दृढ़प्रतिज्ञ और आदर्श संयमी और कौन हुआ? जगत‍्के इतिहासमें श्रीरामकी तुलनामें एक श्रीराम ही हैं। श्रीरामने साक्षात् परमपुरुष परमात्मा होनेपर भी जीवोंको सत्यपथपर आरूढ़ करानेके लिये ऐसी आदर्श लीलाएँ कीं, जिनका अनुकरण सभी लोग सुखपूर्वक कर सकते हैं। उन्हीं हमारे श्रीरामका पुण्य प्राकट्य-दिवस चैत्र शुक्ला नवमी है। इस सुअवसरपर सभी लोगोंको, खास करके उनको, जो श्रीरामको साक्षात् भगवान् और अपने आदर्श पूर्वपुरुषके रूपमें अवतरित मानते हैं, श्रीराम-जन्मका पुण्योत्सव मनाना चाहिये। इसलिये उत्सवका प्रधान उद्देश्य होना चाहिये श्रीरामको प्रसन्न करना और श्रीरामके आदर्श गुणोंका अपनेमें विकासकर श्रीरामकृपा प्राप्त करनेका अधिकारी बनना। अतएव विशेष ध्यान श्रीरामके आदर्श चरित्रके अनुकरणपर ही रखना चाहिये। विधि इस प्रकार की जा सकती है—

१-चैत्र शुक्ल १ से चैत्र शुक्ल ९ तक नौ दिन उत्सव मनाया जाय।

२-प्रत्येक मनुष्य (स्त्री, पुरुष, बालक) प्रतिदिन अपनी रुचिके अनुसार श्रीरामके दो अक्षरी, पंचाक्षरी या चार अक्षरी* मन्त्रका नियमपूर्वक जप करे। पहले दिन नियम कर ले, उसीके अनुसार नौ दिनतक करते रहना चाहिये। कम-से-कम १०८ मन्त्रका जप प्रतिदिन हो जाना चाहिये। उत्साह और समय मिले, तो नौ दिनमें नौ लाख नामका जप कर सकते हैं।

३-प्रतिदिन सुबह या शामको कुछ समयतक नियमित रूपसे श्रीराम-नामका कीर्तन हो।

४-श्रीरामायणका नौ दिनोंमें पूरा पाठ किया जाय। वाल्मीकि, अध्यात्म या श्रीगोसाईंजीकृत मानस इनमेंसे अपनी रुचिके अनुसार किसी भी रामायणका पाठ कर सकते हैं। जो ऐसा न कर सकें, वे कुछ समयतक प्रतिदिन रामायण बाँचें या सुनें।

५-माता-पिताके चरणोंमें प्रतिदिन प्रात:काल प्रणाम करें।

६-यथासाध्य खूब सावधानीसे सत्य भाषण करें।

७-घरमें माता, पिता, भाई, भौजाई, स्वामी, स्त्री, नौकर, मालिक सभी आपसमें प्रेम रखें, अपने अच्छे बर्तावसे सबको प्रसन्न रखें, किसीसे झगड़ा न करें।

८-ब्रह्मचर्यका पालन करें।

९-रामनवमीका व्रत करें।

१०-रामनवमीके दिन श्रीरामजन्मोत्सव मनाया जाय, श्रीराम-कथा हो, सभाएँ की जायँ, जिनमें रामायणका प्रवचन और रामायण-सम्बन्धी शिक्षाप्रद व्याख्यान हो। कहने और सुननेवाले अपने अन्दर श्रीरामके-से गुण लावें, इसके लिये दृढ़ निश्चय करें और श्रीरामसे प्रार्थना करें।

११-आपसके मेलमें बाधा न आती हो तो श्रीरामकी

* 'राम', 'रामाय नम:' या सीताराम।

सवारीका जुलूस नगर-कीर्तनके साथ निकाला जाय।

इन ग्यारह बातोंमेंसे जिनसे जितनी पालन हो सकें, उतनी ही करनेकी चेष्टा करें। श्रीरामनामका जप, कीर्तन, माता-पिता आदिके चरणोंमें प्रणाम, सबसे प्रेम, ब्रह्मचर्यका अधिक-से अधिक पालन, सत्य-भाषण आदि बातें तो जीवनभर पालन करनेयोग्य हैं। इनका अभ्यास अधिक-से-अधिक बढ़ाना चाहिये। श्रीरामकी भक्तिके लिये इन्हीं व्रतोंकी आवश्यकता है।

बोझ प्रभुके कंधेपर

(संत श्रीविनोबाजी भावे)

प्रभुको चिन्ता सबकी रहती है, पर विशेष चिन्ता उसे दीनोंकी होती है। और लोग भी प्रभुके हैं, पर दीन तो प्रभुके ही हैं। औरोंका आधार और भी होता है, पर दीनोंका आधार तो दीनदयाल ही होता है। समुद्रके बीच जहाजके मस्तूलसे उड़े हुए पंछीको मस्तूलके सिवा और ठिकाना कहाँ हो सकता है? उससे हटकर वह कहाँ रह सकता है? दीनका चित्त प्रभुसे छूटे भी तो किससे लगे? इसीलिये दीन प्रभुके कहलाते हैं, प्रभु दीनोंका कहलाता है। दीनताका यही वैशिष्ट्य देखकर कुन्तीने उस समय, जब उसे प्रभुने वर माँगनेको कहा, दीनता माँगी। कोई कह सकता है कि प्रभु तो देता था कटोरीमें, पर अभागिनीने माँगा दोनेमें! फूटी कटोरीसे साबित दोना सौ दर्जे अच्छा।

कदाचित् कोई तार्किक बीचमें ही पूछ बैठे—'तो फूटी कटोरीकी बात ही क्यों?' मैं स्पष्ट कहूँगा—'नहीं, पानी पीनेकी दृष्टिसे तो साबित दोने और साबित कटोरीका मूल्य समान है; पर अन्दर पैठकर देखें तो वह धातुकी कटोरी घातकी वस्तु बन जाती है। कटोरीकी छातीमें एक बड़ी धुकधुकी लगी रहती है—'मुझे कोई चुरा तो नहीं ले जायगा?' दोनेके लिये यह भय असम्भव है, अत: वह निर्भय है।'

फिर कटोरी और साबितका योग ही मुश्किलसे मिलता है। रामदासके शब्दोंमें—'जो बड़ा, सो चोर।' ऐसे उदाहरण बहुत थोड़े हैं कि आदमी बड़ा हो और प्रभु उसपर न्योछावर हों। ऐसे उदाहरणोंका प्राय: अभाव ही है; और जो कहीं और कभी दीख पड़ा, तो इस रूपमें कि जन्मका बड़ा, किंतु बड़प्पन खोकर—अत्यन्त दीन होकर—भगवान्के शरण आया, उसी दिन प्रभुने उसे अपने निकट खींच लिया।

राजा बलिने जब राजत्वका साज हटाकर मस्तक झुकाया, तब प्रभुने उसके आँगनमें खड़े रहना अंगीकार किया।

गजेन्द्रको जबतक अपने बलका घमंड रहा, तबतक उसने सब कुछ करके देख लिया और जब गर्व गला, तब उसे दीनबन्धुकी याद आयी। उसी दिनकी घटनाका नाम तो 'गजेन्द्रमोक्ष' है।

और अर्जुन? जिस दिन वह अपनी जानकारीके ज्वरसे जीवित छूटा, प्रभुने उसे गीता सुनायी। पार्थका प्रभुसे ही मतभेद हो गया। बड़ा आदमी जो ठहरा! प्रभुके मतसे उसके मतका सौतियाडाह क्यों न हो? किंतु बारह वर्षके वनवासने उसे 'महत्ता' से उतारकर 'संतता' की सेवा करनेका अवसर दिया। जब जानकारीपर अधिष्ठित मतके पाँव डगमगाने लगे, तब उसने निकटस्थ प्रभुके पाँव पकड़े। 'मैं तो इन्द्रियोंका गुलाम हूँ, और मेरा 'मत' क्या? मेरी तो इन्द्रियाँ चाहे जैसा निश्चय करती हैं और मनरूपी मल्ल उसपर अपनी सही कर देता है। वहाँ धर्मको देख सकनेवाली दृष्टिका गुजर कहाँ! प्यारे, मैं तुम्हारे द्वारका सेवक हूँ। मुझे तुम्हीं बचाओ।'

तब भगवान्की वाणी प्रस्फुटित हुई। गीता कही जाने लगी। परंतु गीता कहते-कहते भी श्रीकृष्णने एक बात तो कह ही डाली—'बड़प्पनकी बात तो खूब करते हो!' गर्ज यह कि बड़े लोगोंमें यदि किसीके प्रभुका प्यारा होनेकी बात सुनी जाती है तो वह उसीकी, जो अपना बड़प्पन खोकर, अपनी महत्ता एक ओर रखकर छोटे-से-छोटा, दीन, निराधार बन गया। तब वह प्रभुका आत्मीय कहलाया।

जिसे जगत्का आधार है, उसकी जगदाधारसे कैसी रिश्तेदारी? जिसके खातेमें जगत्का आधार जमा नहीं रह गया, उसीका बोझ प्रभु अपने कंधोंपर ढोते हैं।

साधकोंके प्रति—

जाग्रत्‌में सुषुप्ति

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

एक बहुत सुगम बात है। उसे विचारपूर्वक गहरी रीतिसे समझ लें तो तत्काल तत्त्वमें स्थित हो जायँ। जैसे राजाका राज्यभरसे सम्बन्ध होता है, वैसे ही परमात्मतत्त्वका मात्र वस्तु, व्यक्ति, क्रिया आदिके साथ सम्बन्ध है। राजाका सम्बन्ध तो मान्यतासे है, पर परमात्माका सम्बन्ध वास्तविक है। हम परमात्माको भले ही भूल जायँ, पर उसका सम्बन्ध कभी नहीं छूटता। आप चाहे युग-युगान्तरतक भूले रहें तो भी उसका सम्बन्ध सबसे एक समान है। आपकी स्थिति जाग्रत्, स्वप्न या सुषुप्ति किसी अवस्थामें हो, आप योग्य हों या अयोग्य, विद्वान् हों या अनपढ़, धनी हों या निर्धन, परमात्माका सम्बन्ध सब स्थितियोंमें एक समान है। इसे समझनेके लिये युक्ति बताता हूँ। आप मानते हैं कि बालकपनमें मैं था, अभी मैं हूँ और आगे वृद्धावस्थामें भी मैं रहूँगा। बालकपन, जवानी और वृद्धावस्था—तीनोंका भेद होनेसे 'था', 'हूँ' और 'रहूँगा' ये तीन भेद हुए, पर अपने होनेपनमें क्या फर्क पड़ा? भूत, वर्तमान और भविष्य—तीनोंमें अपना होनापन (सत्ता) तो एक ही रहा। अतः आप कैसे भी हों, कैसे भी रहें, आपकी सत्ता एक समान अखण्ड रहती है। आपका कभी अभाव नहीं होता। वह सत्ता ही शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि आदिको सत्ता-स्फूर्ति देती है। वह शरीरादिके आश्रित नहीं है। इससे यह सिद्ध हुआ कि आप हरदम 'है' में स्थित रहते हैं। जड़ वस्तु, क्रिया आदिका सम्बन्ध न रखकर 'है' से सम्बन्ध रखना है। यह जाग्रत्‌में सुषुप्ति है।

वह सत्ता मन, बुद्धि, इन्द्रियों, शरीरकी क्रियाओंमें अनुस्यूत है। वही मन, बुद्धि आदिका प्रकाशक, आधार है। उस सर्व-प्रकाशक, सर्वाधारमें हमें स्थित रहना है। वह सत्ता सदा ज्यों-की-त्यों रहती है। जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, स्थिरता, चंचलता, योग्यता, अयोग्यता, बालकपन, जवानी, वृद्धावस्था, विपत्ति, सम्पत्ति, विद्वत्ता, मूर्खता आदि सभी उस सत्तासे प्रकाश पाते हैं। वस्तुतः उसमें आपकी स्थिति स्वतःसिद्ध है। केवल उसकी ओर लक्ष्य, दृष्टि करनी है। शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि आदिके साथ सम्बन्ध ही मोह है। इस मोहका नाश होनेपर स्मृति जाग्रत् हो जाती है—'**नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा**' (गीता १८।७३)। स्मृतिका अर्थ—जो बात पहलेसे ही थी, उसकी याद आ गयी। कोई नया ज्ञान होना स्मृति नहीं है। अब चाहे कुछ हो जाय, चाहे कोई व्यथा आ जाय, अपनी सत्तामें क्या फर्क पड़ता है? केवल अपनी सत्ताकी ओर दृष्टि करनी है, फिर इसी क्षण जीवन्मुक्ति है। इसमें कोई अभ्यास नहीं करना है।

सत्ताकी ओर दृष्टि न करें, तब भी वह वैसी-की-वैसी ही रहती है। पर उस ओर दृष्टि न करनेसे आप अपनी स्थिति क्रियाओं, पदार्थों, अवस्थाओं आदिमें मानते हैं। भोजन करते समय 'मैं खाता हूँ', जल पीते समय 'मैं पीता हूँ', जाते समय 'मैं जाता हूँ' आदि सब स्थितियोंमें 'हूँ' समान ही रहता है। यदि 'मैं' को हटा दें तो 'हूँ' नहीं रहेगा, अपितु 'है' रहेगा। वह 'है' सदा ज्यों-का-त्यों रहता है।

खोया कहे सो बावरा पाया कहे सो कूर।
पाया खोया कुछ नहीं ज्यों-का-त्यों भरपूर॥

इस 'है' में स्थित होते ही अखण्ड समाधि, जाग्रत् सुषुप्ति हो जाती है।

बोध-कथा—

तुकारामजीकी शान्ति

संत तुकारामजी अपने खेतसे गन्ने ला रहे थे। रास्तेमें लोगोंने गन्ने माँगे, उन्होंने दे दिये। एक गन्ना बच रहा, उसे लेकर वे घर पहुँचे। घरमें बड़ी गरीबी थी और भोजनका अभाव था। फिर, उनकी पत्नी जीजीबाई थी भी बड़े करारे स्वभावकी। उसने झुँझलाकर गन्ना उनके हाथसे छीन लिया और उसे बड़े जोरसे उनकी पीठपर दे मारा। गन्नेके दो टुकड़े हो गये। तुकारामजीने हँसकर कहा—'हम दोनोंके खानेके लिये मुझे दो टुकड़े करने ही पड़ते। तुमने सहज ही कर दिये, बड़ा अच्छा किया।'

नन्दादेवीकी प्राकट्य-कथा

भगवती नन्दा देवी आदिशक्ति जगज्जननी पराम्बाकी साक्षात् अंगभूता मूर्ति हैं। रहस्यत्रयके अन्तर्गत मूर्तिरहस्यमें इस प्रकारसे इनके स्वरूपका प्रतिपादन किया गया है—

ऋषिरुवाच

ॐ नन्दा भगवती नाम या भविष्यति नन्दजा।
स्तुता सा पूजिता भक्त्या वशीकुर्याज्जगत्त्रयम्॥
कनकोत्तमकान्तिः सा सुकान्तिकनकाम्बरा।
देवी कनकवर्णाभा कनकोत्तमभूषणा॥
कमलाङ्कुशपाशाब्जैरलङ्कृतचतुर्भुजा।
इन्दिरा कमला लक्ष्मीः सा श्री रुक्माम्बुजासना॥

(मूर्तिरहस्य १—३)

ऋषि कहते हैं—राजन्! नन्दा नामकी देवी जो नन्दसे उत्पन्न होनेवाली हैं, उनकी यदि भक्तिपूर्वक स्तुति और पूजा की जाय तो वे तीनों लोकोंको उपासकके अधीन कर देती हैं। उनके श्रीअंगोंकी कान्ति कनकके समान उत्तम है। वे सुनहरे रंगके सुन्दर वस्त्र धारण करती हैं। उनकी आभा सुवर्णके तुल्य है तथा वे सुवर्णके ही उत्तम आभूषण धारण करती हैं। उनकी चार भुजाएँ कमल, अंकुश, पाश और शंखसे सुशोभित हैं। वे इन्दिरा, कमला, लक्ष्मी, श्री तथा रुक्माम्बुजासना (सुवर्णमय कमलके आसनपर विराजमान) आदि नामोंसे पुकारी जाती हैं।

वाराहपुराणमें वर्णित है कि प्राचीन समयमें वरुणके अंशसे उत्पन्न सिन्धुद्वीप नामका एक प्रबल प्रतापी नरेश था। वह इन्द्रको मारनेवाले पुत्रकी कामनासे जंगलमें जाकर तप करने लगा। इस प्रकार एक ही आसनसे भीषण तप करते हुए उसने अपने शरीरको सुखा दिया।

सिन्धुद्वीप पिछले जन्ममें विश्वकर्माका पुत्र नमुचि नामक दैत्य था, जो वीरोंमें प्रधान था। वह सम्पूर्ण शस्त्रोंद्वारा अवध्य था। अतः इन्द्रद्वारा जलके फेनसे उसकी मृत्यु हुई थी। वही पुनः ब्रह्माजीके वंशमें सिन्धुद्वीपके नामसे उत्पन्न हुआ। इन्द्रके साथ उसी वैरको स्मरणकर वह अत्यन्त कठिन तपस्या करनेके लिये बैठ गया था।

इस प्रकार बहुत समय बीत जानेपर पवित्र नदी वेत्रवती (मध्यप्रदेशकी बेतवा नदी)-ने अत्यन्त सुन्दर मानुषी स्त्रीका रूप धारणकर एवं अनेक अलंकारोंसे सज-धजकर सिन्धुद्वीप जहाँ बैठकर महान् तप कर रहा था, वहाँ पहुँची। उस सुन्दरी स्त्रीको देखकर राजाका मन क्षुब्ध हो उठा, अतः उसने पूछा—'सुन्दर कटिभागवाली भामिनि! तुम कौन हो? सब सच्ची बात बतानेकी कृपा करो।'

नदीने उत्तर दिया—मेरा नाम वेत्रवती है। मेरे मनमें आपको प्राप्त करनेकी इच्छा हो गयी है। अतः मैं यहाँ आ गयी हूँ। महाराज! इस बातपर तथा मेरे भावोंको विचारकर आप मुझ दासीको स्वीकार करनेकी कृपा करें।

वेत्रवतीके इस प्रकार कहनेपर राजा सिन्धुद्वीपने भी उसे स्वीकार कर लिया। समय पाकर शीघ्र ही उससे पुत्रकी उत्पत्ति हुई। उस बालकमें बारह सूर्यों-जैसा तेज था। वेत्रवतीके उदरसे जन्म होनेके कारण वह वेत्रासुरके नामसे प्रसिद्ध हुआ। उसमें पर्याप्त बल था। उसके तेजकी सीमा न थी। धीरे-धीरे वह प्राग्ज्योतिषपुर (कामरूप-आसाम)-का नरेश बन गया और युवा होनेपर तो उसके बल-विक्रम बहुत बढ़ गये। उसने अब महायोगशक्तिद्वारा सात द्वीपोंवाली इस सम्पूर्ण पृथ्वीको जीत लिया। बादमें कालकेयोंको जीतनेके लिये उसने मेरु-पर्वतपर चढ़ाई की। जब वह असुर इन्द्रके पास गया तो वे भयसे वहाँसे भाग चले। अग्निने तो उसे देखते ही अपना स्थान छोड़ दिया। ऐसे ही यम, निर्ऋति और वरुण—ये सब-के-सब उसके आनेपर अपने स्थानसे हटते गये। अन्तमें इन्द्रप्रभृतिको साथ लेकर वरुणदेवता वायुदेवताके संनिकट गये। फिर पवनदेव भी इन्द्र आदि समस्त देवताओंके सहित धनाध्यक्ष कुबेरके पास पहुँचे। शंकरजी कुबेरके मित्र हैं; अतः धनाध्यक्ष कुबेर देवताओंको साथ लेकर शंकरजीके पास पधारे। राजन्! इतनेमें बलाभिमानी वेत्रासुर भी गदा लिये हुए कैलासपर जा पहुँचा। इधर भगवान् शिव उसे अवध्य

समझकर देवताओंके साथ ब्रह्मलोक पहुँचे। वहाँ पुण्यकर्म करनेवाले बहुत-से देवता और सिद्धोंका समाज उनकी स्तुति कर रहा था। उस समय जगत्‌की रचना करनेमें कुशल ब्रह्माजी भगवान् विष्णुके चरणसे प्रकट हुई गंगाके पावन जलमें प्रविष्ट होकर क्षेत्रज्ञ परमात्माकी माया गायत्रीका नियमपूर्वक जप कर रहे थे। अब देवता बड़े जोरसे चिल्लाकर कहने लगे—'प्रजाओंकी रक्षा करनेवाले भगवन्! हमें बचाइये। वेत्रासुरसे हम समस्त देवता और ऋषि अत्यन्त भयभीत हो गये हैं। आप हमारी रक्षा करें! रक्षा करें!'

देवताओंके इस प्रकार पुकार मचानेपर ब्रह्माजीकी दृष्टि वहाँ आये हुए उन देवताओंकी ओर गयी। वे सोचने लगे—'अहो! भगवान् नारायणकी माया बड़ी विचित्र है। इस विश्वका कोई भी स्थान उससे रिक्त नहीं है। असुरों और राक्षसोंसे भला मेरा क्या सम्बन्ध?' वे इस प्रकार अभी चिन्तन कर ही रहे थे कि तबतक वहाँ एक अयोनिजा कन्या प्रकट हो गयी। उसका शरीर श्वेतवस्त्रोंसे सुशोभित हो रहा था। उसके गलेमें माला तथा मस्तकपर किरीट उद्भासित हो रहा था। उसकी कान्ति अत्यन्त उज्ज्वल थी तथा उसकी आठ भुजाएँ थीं, जिनमें क्रमसे शंख, चक्र, गदा, पाश, शक्ति, तलवार, घण्टा और धनुष—ये दिव्य आयुध सुशोभित हो रहे थे। वह देवी तूणीर आदि अन्य सभी युद्धोपकरणोंसे भी सुसज्जित होकर जलसे बाहर निकल पड़ी। वह महायोगेश्वरी परब्रह्म परमात्माकी शक्ति सिंहपर समासीन थी। अब सहसा वह अनेक रूप धारणकर सभी असुरोंके साथ युद्ध करने लगी। उस देवीमें अपार शक्ति थी। उसके पास बहुत-से दिव्य अस्त्र थे। इस प्रकार देवताओंके वर्षसे यह युद्ध एक हजार वर्षोंतक चलता रहा और अन्तमें इस संग्राममें देवीद्वारा भयंकर वेत्रासुर मार डाला गया। अब देवताओंकी सेनामें बड़े जोरसे आनन्दकी ध्वनि होने लगी। उस दैत्यकी मृत्यु हो जानेपर सभी देवता युद्धभूमिमें ही—'भगवती! आपकी जय हो! जय हो!' कहकर स्तुति-प्रणाम करने लगे। भगवान् शंकरने भी उनकी स्तुति की।

तत्पश्चात् देवतालोग भी बड़े उच्चस्वरसे उन परमेश्वरीकी जयध्वनि करने लगे। अबतक ब्रह्माजी जलमें जप ही कर रहे थे। अब जब जयध्वनि उन्हें श्रवणगोचर हुई तो वे जलसे बाहर निकले और देखा, परम कुशल देवी सम्पूर्ण कार्य सम्पन्न करके सामने विराजमान हैं। अब उन्होंने यह तो भलीभाँति जान लिया कि देवताओंका कार्य सिद्ध हो गया, परंतु भविष्यके कार्यको परिलक्ष्यकर ब्रह्माजी बोले—देवताओ! अनुपम अंगोंसे शोभा पानेवाली ये देवी अब हिमालय पर्वतपर पधारें और आपलोग भी अब तुरंत वहाँ चलकर आनन्दसे रहें। नवमी तिथिके दिन इन देवीकी सदा स्थिरचित्त एवं ध्यान-समाधिद्वारा आराधना करनी चाहिये। ऐसा करनेसे ये सम्पूर्ण प्राणियोंको वर देंगी, इसमें लेशमात्र संदेह नहीं। इस (नवमी) तिथिको जो पुरुष अथवा स्त्री पक्वान्न प्रसादरूपसे भोजन करेंगे, उनके सभी मनोरथ सिद्ध हो जायँगे।

तत्पश्चात् उन्होंने पुनः देवीसे कहा—'देवि! आपके द्वारा यह कार्य सम्पन्न हुआ। किंतु अभी हमारा एक दूसरा बहुत बड़ा कार्य शेष है। वह यह कि आगे महिषासुर नामका एक राक्षस उत्पन्न होगा, जिसका विनाश भी आपके ही द्वारा सम्भव है।'

राजन्! इस प्रकार कहकर ब्रह्माजी तथा सम्पूर्ण देवता देवीको हिमालय पर्वतपर प्रतिष्ठितकर यथास्थान प्रस्थित हो गये। हिमवान् पर्वतपर आनन्दसे विराजनेके कारण उनका नाम 'नन्दादेवी' हुआ।

डॉ० राजबली पाण्डेयके अनुसार हिमालयमें गढ़वाल जिलेके बधा परगनेसे ईशानकोणकी ओर 'नन्दादेवी' पर्वत शिखर है। यह गौरीशंकरके बाद विश्वका सर्वोच्च शिखर है। नन्दा देवी इसमें विराजती हैं। भाद्र शुक्ल सप्तमीको प्रति बारहवें वर्ष यहाँकी यात्रा होती है। इसका आयोजन गढ़वालका राजकुटुम्ब करता रहा है। नन्दगृहमें उत्पन्न हुई नन्दादेवीने असुरोंको मारकर जिस कुण्डमें स्नान कर सौम्यरूपता पायी थी, वह यहाँ रूपकुण्ड कहलाता है।

'ॐ नन्दायै नमः' भगवती नन्दादेवीका मन्त्र है।

सत्य-कथा—

सन्त-स्वभाव

(श्रीचारुचन्द्र शीलजी)

बात पुरानी है। रामतनु चाटुर्ज्ये हुगली जिलेके एक छोटे-से गाँवमें रहते थे। उनके पिता पुरोहितीका काम करते थे। पर उनकी इच्छा लड़केको पढ़ाकर उसे अच्छी नौकरीमें लगा देनेकी होनेसे उन्होंने रामतनुको इंट्रेंसकी परीक्षा पास करवाकर कलकत्ते भेज दिया और वहाँ एक सरकारी महकमेमें बतौर नौकर रखवा दिया। वे वहाँ पढ़ते भी रहे। धीरे-धीरे एफ०ए० कर लिया। उन्नति करते-करते दो सौ रुपये महीनेपर एक सरकारी स्कूलमें हेडमास्टरी करने लगे। उस जमानेमें दो सौ रुपये महीनेकी नौकरी बहुत बड़ी चीज थी। इससे रामतनु बाबूका गाँवमें गौरव बढ़ गया था। गाँवमें उनका एक पड़ोसी अधरचन्द्र था। वह रामतनुकी इस उन्नति तथा गौरवसे बहुत जलता था और समय-समयपर रामतनुकी बदनामी करने, उनपर लांछन लगाने तथा नुकसान पहुँचानेकी चेष्टा किया करता था। रामतनु तथा उनकी स्त्री दोनोंके स्वभाव बहुत अच्छे थे। वे अभिमान तो करते ही नहीं, किसीका बुरा करनेकी कल्पना तो उनके मनमें कभी आती ही नहीं, वे गाँवभरका सहज ही भला चाहते थे और यथासाध्य किया भी करते थे। इससे गाँवमें उनकी शोभा कीर्ति और भी बढ़ गयी थी। यह भी अधरचन्द्रकी जलन बढ़ानेमें एक खास कारण था। रामतनुकी उसकी इस मनोवृत्तिका कुछ भी पता नहीं था।

एक समय छुट्टियोंमें रामतनु गाँवपर आये हुए थे। अधरचन्द्रने दो-तीन गुंडोंको पहलेसे ही तैयार करके एक दुष्ट-योजना बना रखी थी। बाहरसे किसी एक दुश्चरित्रा स्त्रीको वहाँ बुला लिया था। योजना थी कि किसी दिन वह स्त्री व्यर्थ ही हो-हल्ला मचाये, रामतनुपर लांछन लगाये और उसी समय वे गुंडे तथा अधरचन्द्र उस स्त्रीकी रक्षाके बहाने रामतनुपर टूट पड़ें। योजनाके अनुसार ही काम हुआ। एक दिन रामतनु कहीं बाहरसे घर आ रहे थे। दोपहरका समय था। एक छोटी-सी सुनसान गली थी। निश्चित स्थानपर वह स्त्री खड़ी थी। रामतनु उसके पाससे निकले कि उसने बड़े जोरोंसे चिल्लाकर पुकारा—'छोड़ दे, छोड़ दे—बदमाश कहींका—हाय! हाय! तू ब्राह्मण मास्टर होकर मेरा शील लूटना चाहता है। अरे कोई बचाओ।' रामतनु तो हक्के-बक्के रह गये। वह रामतनुके बिलकुल समीप आ गयी थी। कपड़े अस्त-व्यस्त कर रखे थे उसने। अधरचन्द्र तो गुंडोंको लिये छिपा खड़ा ही था। तुरंत आकर हल्ला मचाने तथा रामतनुको गालियाँ बकते हुए उन्हें मारने लगा। गुंडे भी प्रहार करने लगे। रामतनुकी तो कुछ समझमें ही नहीं आया कि यह सब क्या और क्यों हो रहा है। हल्ला सुनकर आस-पासके घरोंमेंसे लोग निकल आये। खासी भीड़ इकट्ठी हो गयी। गाँवके लोग तो रामतनुके स्वभावसे परिचित और उनके प्रति अत्यन्त सहानुभूति तथा श्रद्धा रखते थे। प्रायः सभी उनसे उपकृत हुए थे। रामतनुके उपकार तो अधरचन्द्रपर भी कम नहीं थे। पड़ोसीके नाते वह बीसों बार उनकी सहायता प्राप्त कर चुका था। एक बार तो अधरचन्द्रको प्लेग हो गया था। डबल गिल्टी थी। सारे गाँवमें प्लेग फैला था। घरवाले भी सब अधरचन्द्रको छोड़कर चले गये थे। उस समय एक रामतनु ही ऐसे थे, जो अपने पड़ोसी अधरकी सेवामें चौबीसों घंटे लगे रहे, दवा-दारू की और उसे बचाया। घरवाले तो दस दिनके बाद लौटे थे। पर कृतघ्न तथा दूसरेको दुःख देनेमें ही सुखका अनुभव करनेवाले अधरचन्द्रपर रामतनुके उपकारोंका कोई असर नहीं था। इसी दुष्ट स्वभाववश यह आज अपनी आसुरी क्रियामें लग रहा था। उसने तो हो-हल्ला इसलिये मचाया था—गाँववालोंको वह अपने पक्षमें कर ले। रामतनुके प्रति वे सब नाराज हो जायँ तथा गाँवभरमें रामतनुकी बदनामी हो जाय। पर भगवान् तो सब देखते ही हैं। वहाँ एकत्र हुए गाँववालोंमें एकाधको छोड़कर प्रायः सभी रामतनुको सच्चा सत्पुरुष तथा निर्दोष मानते

थे और अधरचन्द्रको दोषी! वे अधरचन्द्रके दुष्ट स्वभावसे भी परिचित थे। उनमेंसे एकने उस स्त्रीको भी पहचान लिया, वह समीपके गाँवकी ही एक बड़ी बदनाम दुश्चरित्रा थी। उसका पेशा यही था। गुंडे भी पहचाने गये। लोगोंने तुरंत रामतनुको बचा लिया। गुंडोंपर तथा अधरचन्द्रपर उनको रोष आ गया। वे सब इनपर टूट पड़े, पर सात्त्विक हृदयके श्रीरामतनु महाराज इसको नहीं सह सके। उन्होंने हाथ जोड़कर स्वयं बीचमें अपनेको डालकर उन सबको बचाया। हालाँकि उस समय उनके सारे शरीरमें मारके कारण बड़ी पीड़ा हो रही थी। कनपटीके पास तथा बायें कंधेपर लाठीकी चोटसे खून बह रहा था। पर वे इसकी परवा न करके अपने स्वभाववश उन दुष्टोंको बचानेमें लग गये। आखिर अपनी शपथ दिलवायी तथा मारनेवालोंकी मार स्वयं सहनेको तैयार हो गये। तब उन दुष्टोंकी जान बची। वह स्त्री तो पहचाने जाते ही भाग गयी।

इधर यह सब देखकर दो आदमी भागकर दो मील दूर एक गाँवमें थाना था, वहाँ खबर देने पहुँच गये थे। उनसे इस जुल्मकी बातें सुनते ही दारोगाजी सिपाहियोंको साथ लेकर तुरंत चल दिये। दारोगाजी भी भाग्यसे रामतनुजीके द्वारा उपकृत थे। रामतनुजी विद्वान् तथा उच्च पदपर नौकरी करते थे, इससे सरकारी क्षेत्रमें उनका बड़ा आदर था, सभी उनकी इज्जत करते थे। उन्होंने ही आरम्भमें दारोगाजीकी नौकरी लगायी थी। दारोगाजीने पहुँचते ही जाँच की और गुंडोंसहित अधरचन्द्रको पकड़ लिया। पचासों आदमी गवाही देनेको तैयार थे। सिपाहियोंको भेजकर दारोगाजीने उस बदचलन स्त्रीको भी पकड़ मँगवाया। उसने आते ही अपराध स्वीकार किया और बताया कि 'यह तो अधरचन्द्रके द्वारा पंद्रह रुपये पाकर उसके कथनानुसार करनेको आयी थी। उसे जैसा करनेको अधरचन्द्रने कहा था, वैसा ही किया। उसे यह पता नहीं था कि ये लोग रामतनु बाबूको मारेंगे।'

गुंडे भी पुलिसके भयसे ढीले पड़ रहे थे। यह सब देखकर अधरचन्द्रके होश हवा हो गये। वह बिलकुल घबरा गया, काँपने लगा और उसकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह निकली। यह सब देखकर रामतनु बाबू बहुत दुखी हो रहे थे। उन्हें अपने अपमान तथा चोटका कष्ट तो भूल गया। वे अधरचन्द्रके दुःखसे दुखी होकर उसे छोड़ देनेके लिये दारोगाजीसे विनम्र अनुरोध करने लगे।

दारोगाजीने बड़े आदरसे, परंतु कड़ाईसे कहा कि—'रामतनु बाबू! आप पुलिसके काममें दखल न दीजिये। हमने दुष्टोंको रँगे हाथों पकड़ा है और हमारे पास इनको सजा दिलानेके लिये सबूत तथा गवाह मौजूद हैं। अपराधोंका घटना अपराधियोंको दण्ड मिलनेसे ही सम्भव है। हम इस सम्बन्धमें आपका कोई अनुरोध नहीं सुनना चाहते।' रामतनुजीने फिर बहुत कहा, तब दारोगाजीने कहा कि—'हमने तो आपके घावों तथा चोटोंकी जाँच करके रिपोर्ट देनेके लिये हुगलीसे सरकारी डॉक्टरको बुलाया है और आप इन दुष्टोंको छुड़ाना चाहते हैं।'

पुलिसवालोंने रामतनु बाबूको आदरसहित उनके घर पहुँचा दिया। वहाँ एक सिपाही इस कामके लिये बैठा दिया गया, जो डॉक्टर आनेपर उनकी रिपोर्ट लेकर थानेपर आ जाय। गाँवके बहुत-से लोग रामतनु बाबूके घरपर जमा हो गये। सभी चाहते थे दुष्टोंको दण्ड मिले। पर रामतनु बाबूको बड़ा मानस-क्लेश हो रहा था। वे किसी भी उपायसे अधरचन्द्रको बचाना चाहते थे। बड़ी व्याकुलता थी उनके कोमल हृदयमें—

'पर दुख द्रवहिं संत सुपुनीता।'

वे गाँववालोंसे बोले—'देखिये, मनुष्य अपने-अपने स्वभावके अनुसार बर्ताव व्यवहार करता है। परंतु दुःख तो सभीको होता है। आज मेरे कारणसे अधरचन्द्र तथा उनके परिवारको कितनी पीड़ा हो रही है। सचमुच उनकी इस पीड़ामें मैं ही कारण हूँ। किसी भी हेतुसे हो, अधरबाबू मेरे कारणसे दुखी थे, और उस दुःखने ही उनसे ऐसा व्यवहार करवा दिया। वस्तुतः मुझपर जो मार पड़ी, वह तो मेरे अपने ही पूर्वकृत कर्मका फल है। मेरा प्रारब्ध ऐसा न होता तो अधरचन्द्रमें क्या शक्ति थी कि वे मुझको कष्ट पहुँचा सकते। यह तो मेरे ही कर्मका फल मुझे मिला। वे भूलसे इसमें निमित्त बनकर अपना बुरा कर बैठे, यह उनकी भूल है। भूला हुआ आदमी

दया तथा क्षमाका पात्र होता है। वह तो पागल है न? अतएव मेरी प्रार्थना है—एक बार हमलोग चलकर दारोगाजीसे प्रार्थना करें कि वे इस मामलेको आगे बढ़ावें ही नहीं। वे न मानें तो फिर ऐसी व्यवस्था करें कि अधरचन्द्रके विरुद्ध कोई भी भाई गवाही न दें। मैंने तो अभी बयान दिया ही नहीं है। मैं अपने बयानमें कह दूँगा कि पैर फिसलकर गिर पड़नेसे मेरे चोट आ गयी।'

आपलोग एक बातपर और विचार कीजिये—अबतक अपने गाँवका यश सर्वत्र फैला है। किसीको भी किसी अपराधपर कभी सरकारी दण्ड नहीं मिला। कभी अपने गाँवके नामपर दाग लगा ही नहीं। अब यदि अधरबाबू दण्डित हो गये तो गाँवपर धब्बा लग जायगा। लोग चर्चा करेंगे कि उस गाँवमें ऐसे लोग रहते हैं। अत: प्रकारान्तरसे गाँवका ही नाम बदनाम होगा। आगे चलकर इससे कोई लोग अनुचित लाभ उठाकर गाँववालोंको परेशान भी कर सकते हैं। अत: इस भावी विपत्ति तथा कलंकके टीकेसे बचनेके लिये भी अधरबाबूपर कोई कार्यवाही नहीं होनी चाहिये, और वे निर्दोष ही छूट जाने चाहिये। गाँवभरको निष्कलंक बनाये रखनेके लिये यह बड़ा आवश्यक है। गाँववाले तो यह सब सुनकर दंग थे। कोई मन-ही-मन रामतनु बाबूकी प्रशंसा कर रहे थे और कोई-कोई उनकी इस दयाको कायरता, देश-काल-पात्रका विरोधी आचरण, अपराध बढ़ानेकी चेष्टा और मूर्खता बतला रहे थे। रामतनु बाबूकी आँखोंसे परदु:खकातरताके कारण आँसू बह रहे थे।

उधर पुलिसके आते ही गाँवभरमें समाचार फैल गया था। अधरबाबूकी स्त्री बड़ी घबरा रही थी। वह भली थी, पतिको यह सब दुष्कर्म करनेसे रोका भी करती थी। पर वह खल-हृदय उसकी बातको मानता नहीं था। रामतनु बाबूकी स्त्री अबलासे उसकी बहुत प्रीति थी। रामतनु बाबूकी पत्नी—यह सोचकर कि कहीं आवेशमें आकर गाँवके लोग अधरबाबूकी स्त्रीको परेशान न करें—दौड़कर उसको अपने घर ले आयी थी और उसको समझा दिया था कि 'हमलोगोंके द्वारा अधर बाबूका कुछ भी अनिष्ट नहीं होगा।' वह अपने भले पति रामतनु बाबूके सत्-स्वभावसे परिचित थी और इस स्वभावके रक्षण तथा संवर्धनमें उनकी सहायक भी थी। अस्तु! इस समय रामतनु बाबू गाँववालोंसे जो कुछ कह रहे थे, सब अधरचन्द्रकी स्त्री सुन रही थी और उसके हृदयमें रामतनु तथा उनकी पत्नी अबलाके प्रति श्रद्धा बढ़ी जा रही थी और अपने पतिके दुष्ट स्वभावके कारण अपने प्रति लज्जा और घृणा!

गाँववालोंमें श्रीहरिपद नामक एक सात्त्विक स्वभावके वृद्ध सज्जन थे। उनको रामतनुकी बातें बहुत अच्छी लगीं और उन्होंने रामतनु बाबूकी प्रशंसा करते हुए तथा उनका समर्थन करते हुए गाँववालोंको समझाया। गाँववालोंका मन कुछ पलटा। इतनेमें डॉक्टर आ गये। डॉक्टर भी रामतनु बाबूसे परिचित तथा उनके प्रति श्रद्धा रखते थे। रामतनु बाबूने समझाकर डॉक्टरसे यह लिखवा लिया कि 'उन्होंने सब जाँच कर ली है। रिपोर्ट पीछे देंगे।' रामतनु बाबूने अधरचन्द्रके अनुकूल रिपोर्ट लिखनेके लिये डॉक्टरसे बहुत अनुरोध किया, पर डॉक्टरको उनकी बात नहीं जँची। आखिर वे इस बातपर राजी हो गये कि 'हम रिपोर्ट अभी नहीं दे रहे हैं। इस बीच आप दारोगाजीको राजी कर लीजिये; केस ही न चले तो फिर हमारी रिपोर्टकी आवश्यकता ही नहीं रहेगी। सारा मामला ही समाप्त हो जायगा।' इसीके अनुसार उन्होंने रिपोर्ट पीछे देनेकी बात लिख दी थी।

डॉक्टरके लौट जानेपर रामतनु बाबू गाँवके चार-पाँच सम्भ्रान्त वृद्ध पुरुषोंको लेकर थानेपर गये। दारोगाजीको सब बातें समझायीं और रो-रोकर श्रीअधरचन्द्र तथा उसके साथियोंको बिना केस चलाये छोड़ देनेका अनुरोध किया। दारोगापर रामतनुजीके इस विलक्षण व्यवहारका प्रभाव पड़ा। उस दिन भाग्यसे थानेमें पुलिसके सर्कल इन्सपेक्टर प्रमथ बाबू आये हुए थे। वे भी यह सब सुन-देख रहे थे। उनपर प्रभाव पड़ा। दारोगाजीने उनसे बात की। ये सारी बातें अधरचन्द्र तथा उनके साथी भी सुन रहे थे। गाँवमें भी रामतनुकी चेष्टा

तथा बातें वे देख चुके थे। अत: उनका हृदय अपने दुष्कर्मपर पश्चात्तापकी आगसे जल रहा था और वह क्रमश: बदलकर निर्मल हुआ जा रहा था। जो काम बड़े-बड़े दण्डों तथा जेलोंसे नहीं हो सकता, वह रामतनुजीने सद्व्यवहारसे अनायास हो रहा था।

प्रमथ बाबूने बीचमें पड़कर गाँववालोंसे कहा—'देखिये! आपलोग एक अपराधीको, जो अपराध करते समय पकड़ा गया है, बचाने जाकर अपराध बढ़ानेमें सहायक बन रहे हैं और प्रकारान्तरसे समाजका तथा अपने गाँवका अहित करने जा रहे हैं। ऐसे अपराधीको जरा भी दण्ड नहीं मिलेगा तो अपराध करनेवाले लोगोंका दु:साहस बढ़ेगा, जो समाजके लिये बड़ा घातक होगा। ये रामतनु बाबू तो साधुहृदय हैं, ये इस बातको नहीं समझ सकते। पर आपलोग इनके इस पागलपनका साथ क्यों दे रहे हैं?'

इसपर श्रीहरिपद तथा रामतनु बाबूने अनेकों युक्तियोंसे प्रमथ बाबूको समझानेकी चेष्टा की कि वास्तवमें दण्डसे अपराध नहीं घटते। अपराध घटेंगे तो प्रेम तथा सहानुभूतिसे ही घटेंगे। कष्टके समय अहैतुक सेवा प्राप्त करनेपर ही अपराधीका हृदय-परिवर्तन होगा। फिर उन्होंने यह भी कहा कि 'हमलोगोंने निश्चय किया है कि न तो आपको अधर बाबूके विरुद्ध एक भी गवाह मिलेगा, न कोई सबूत ही। तब आप क्या करेंगे?'

प्रमथ बाबू प्रभावित तो पहलेसे ही थे। अब उनपर और भी प्रभाव पड़ा। पर उन्होंने जरा रुखाईसे कहा—'देखिये, मुझे आपलोगोंके प्रति आदर है—आपकी उदारताका मैं सम्मान करता हूँ, पर इस प्रकार सहसा अपराधीको छोड़कर हमलोग कर्तव्यविमुख नहीं होना चाहते। हम सोचेंगे—क्या किया जा सकता है। आपलोग अभी उन्हें छुड़ाना चाहते हैं तो हमलोग अस्थायी रूपसे इन्हें छोड़ देते हैं, परंतु कोई इनकी जमानत देनेवाले आपलोगोंमेंसे तैयार हो जायँ।'

इसपर रामतनु बाबू तुरंत बोल उठे—'महाशय! मैं जमानत-मुचलका जो कुछ आप कहें, देनेको तैयार हूँ।'

यह सुन-देखकर इन्सपेक्टर प्रमथ बाबू तथा दारोगाजी दोनोंका हृदय द्रवित हो गया। वे भी आखिर मनुष्य ही थे। उन्होंने अधरचन्द्रको बुलाकर कहा—देखा तुमने? सुनी सब बातें? कहाँ तुम और तुम्हारा बर्ताव और कहाँ ये और इनका बर्ताव! अब तुम क्या कहते हो? अधरचन्द्रकी आँखें तो सावन-भादोंके बादल बनी हुई थीं। उसने रोते तथा घिघियाते हुए कहा—'हुजूर! पश्चात्तापकी आगने मेरे हृदयकी सारी कालिमाको जलाकर खाक कर दिया है। मैं प्रत्यक्ष देख रहा हूँ, मैं पिशाच हूँ और ये महान् संत हैं, देवता नहीं, देवताओंके भी पूजनीय महात्मा हैं। पर मैं बचना नहीं चाहता। मुझे आजन्म कालापानी मिलना चाहिये। पर मेरे अपराधोंको देखते तो आजन्म कालापानी भी पर्याप्त नहीं होगा। मैंने जीवनभर अपराध-ही-अपराध किये हैं। सदा भला करनेवालोंका भी सदा बुरा किया है। यद्यपि इनकी कृपासे मेरे हृदयकी सारी कालिमाका विषभरा कूड़ा जल गया है। इसीसे मैं बचना नहीं चाहता। आप मेरा चालान कीजिये। मैं स्वयं अपना अपराध स्वीकार करूँगा।'

यह सुनकर रामतनु बाबू रो पड़े और लपककर उन्होंने अधरचन्द्रको हृदयसे लगा लिया और उसके आँसू पोंछने लगे।

प्रमथ बाबूकी रायसे दारोगाजीने उन लोगोंको छोड़ दिया। सब कागज फाड़ दिये गये। सब सानन्द विदा हुए। प्रमथ बाबूने तथा दारोगाजीने रामतनु बाबूकी चरण-धूलि ली। रामतनु बाबू बड़े आदरसे अधरचन्द्रके गलेमें हाथ डाले चले जा रहे थे। रामतनु बाबूका चेहरा खिल रहा था और उनके नेत्रोंमें हर्षके आँसू थे। अधरचन्द्रका सिर नीचा था, मुख उदास था और नेत्रोंसे पश्चात्तापके आँसुओंकी धारा बह रही थी। गाँववाले घेरे चल रहे थे। गुंडे भी भले मानस बनकर घर लौट रहे थे।

'उमा संत कइ इहइ बड़ाई । मंद करत जो करइ भलाई॥'

नव-संवत्सर—नयी ऊर्जाके प्राकट्यका अवसर

(प्रोफेसर डॉ० श्रीगिरिजाशंकरजी शास्त्री)

हिन्दू पंचांगका नया संवत् यानी विक्रम संवत् २०७९ आज चैत्र शुक्ल प्रतिपदासे आरम्भ हो रहा है। यह समय उल्लास और उमंगका होता है। इस समय सम्पूर्ण धरा रंग-बिरंगी हो जाती है। चैती फसल नवान्न होकर घरोंमें आ जाती है। मनसे आनन्द फूट पड़ता है। आमके वृक्षोंमें बौरका आना, महुएके फूलका झड़ना, कटहलका पुलकित होना, पृथ्वीका धन-धान्यसे सम्पन्न होना, शीतल-मन्द-सुगन्ध त्रिविध वायुका बहना, वृक्षोंमें नयी कोपलोंका आना, लाल टेसू, पीली सरसोंके पुष्प ही नहीं, अपितु प्राय: सभी रंगोंके फूलोंके खिलनेसे समूची धराका सतरंगी हो जाना, मादकतासे मनका आनन्दातिरेकसे भर जाना ही नहीं, लताकुंजोंमें पक्षियोंका कलरव, भौंरोंका गुंजन, कोयलका कूकना, समशीतोष्ण वातावरण ही नये संवत्सरके प्राकट्यका ज्ञान करा देता है।

कालगणना और संवत्सर—भारतीय काल (समय)-गणना हमारे ऋषियोंकी सबसे महत्त्वपूर्ण खोज है, जिसका सबसे महत्त्वपूर्ण अंग संवत्सर-निर्णय है। मैत्रेय्युपनिषद् कहता है कि काल स्वयं परमात्मा है। इस कालरूपी ब्रह्मके दो भेद हैं, प्रथम अकल अर्थात् कला (अवयव)-रहित, दूसरा सकल जो अवयवसहित है। अकल काल प्रलयमें भी बना रहता है, जबकि सकल काल सूर्यकी उत्पत्तिके बाद आता है। कालका विभाग सूर्यके अधीन ही है। सूर्यसे ही घटी, पल, दिन, रात्रि, मास, ऋतु, अयन एवं संवत्सरकी उत्पत्ति होती है।

संवत्सर एक वर्षके समयको कहते हैं। कहा गया है कि '**संवसन्ति ऋत्वादय: यत्र**' अर्थात् जिसमें ऋतुएँ, अयन, मास, पक्ष, तिथि तथा दिन एवं रात्रि निवास करते हैं, वह संवत्सर है। भगवान् श्रीकृष्णने श्रीमद्भगवद्गीतामें स्वयंको ऋतुओंमें वसन्त कहा है। वैदिककालमें संवत्सरका आरम्भ इसी ऋतुसे होता था। उन दिनों पाँच वर्षोंका एक युग माना गया था। तैत्तिरीयारण्यकमें कहा गया है कि, 'हे कालरूप ब्रह्म! तुम संवत्सर हो, परिवत्सर हो, इदावत्सर हो, इदुवत्सर हो तथा इद्वत्सर हो, वसन्त तुम्हारा सिर (मुख) है।' इससे यह ज्ञात होता है कि वैदिक कालमें वसन्त ऋतु चैत्रमासमें ही होती थी। तैत्तिरीयोपनिषद्में कहा गया है—'**मुखं वा एतत् संवत्सरस्य यच्चित्रा पौर्णमास:।**' इसका अर्थ है कि चैत्रकी पूर्णिमा ही संवत्सरका मुख है।

संवत्सरका स्वरूप—सूर्य नक्षत्रमण्डलके किसी बिन्दुसे चलकर जब पुन: उसी बिन्दुपर आ जाता है अर्थात् ३६० डिग्री पूरा कर लेता है, उस समयावधिको एक सौरवर्ष कहते हैं। इसे हम वर्ष कहते हैं। यह ३६५ दिनोंका होता है। चन्द्रमाका वर्ष (चान्द्र वर्ष) ३५४ दिनोंका होता है। दोनोंमें ११ दिनोंका अन्तर हो जाता है। अतएव तीसरे वर्ष, एक अधिकमास दोनोंके वर्षोंके अन्तरका मेल करा देता है।

एक और वर्ष है, बार्हस्पत्य वर्ष, जो बृहस्पतिकी गतिपर आश्रित है। बृहस्पति ३६१ दिनोंमें एक राशि चलता है। एक राशि ३० डिग्रीकी होती है। बृहस्पति लगभग बारह सौर वर्षोंसे बारह राशियोंको पूरा करता है। बृहस्पतिके एक राशि चलनेके कालको एक संवत्सर कहा गया है। वैदिक कालके पाँच वर्षोंके युगको हटाकर संहिताकारोंने जय, विजय आदि साठ संवत्सर स्थापित कर दिये। कह दिया गया—'**बृहस्पते: मध्यमराशिभोगात्सांवत्सरं सांहितिका वदन्ति।**' जिस दिन बृहस्पति राशि-परिवर्तन करता है, उस दिनसे बार्हस्पत्य वर्ष आरम्भ होता है। यह प्राय: सौरवर्षके मध्यमें परिवर्तित होता है, किंतु वर्षपर्यन्त चान्द्र वर्षारम्भके समयमें विद्यमान संवत्सरका ही संकल्प किया जाता है। इन तीनोंके अतिरिक्त दो और संवत्सर—नाक्षत्र एवं सावन हैं, जो वैदिक कालमें भी विद्यमान थे। इस तरह कुल पाँच संवत्सर—सौर, चान्द्र, बार्हस्पत्य, सावन एवं नाक्षत्र हैं। वैदिक कालमें इन्हीं पाँचों अंगोंके समाहारकी पंचांग संज्ञा थी। कालान्तरमें उपर्युक्त पाँचों अंगोंका ही सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप पंचांगका परिवर्तित रूप है। तिथि, योग तथा करण नाक्षत्र कलासे उद्भूत हैं। वर्तमान समयमें

सौरादि पाँचों अंगोंमें केवल दो—सौर एवं चान्द्र संवत्सरोंका ही प्रयोग व्यवहार-जगत्में चल रहा है। वर्तमान पंचांगोंमें वर्षके राजा, मन्त्री, धान्येश आदि लिखे जाते हैं। संहिता ग्रन्थोंमें लिखा गया है कि जिस दिन चैत्र शुक्ल प्रतिपदा हो, वह जिस दिन हो वही राजा तथा मेष संक्रान्तिके दिनका स्वामी वर्षका मन्त्री होगा।

नवसंवत्सर महाराज विक्रमादित्यकी गौरवमयी कीर्तिगाथा गा रहा है। युधिष्ठिरका सिंहासनारोहण, सतयुगका प्रारम्भ, मत्स्यावतार इसी तिथिको हुआ था। पुराणोंके अनुसार, ब्रह्माजीने जगत्‌की सर्जना इसी तिथिसे आरम्भ की थी। ऋषियोंने कालमानोंको प्रकृतिके आधारपर निर्धारित किया है। प्रकृतिको देखकर संवत्सरके आनेका बोध हो जाता है।

संवत्सर-पूजन

चैत्रमासके शुक्लपक्षकी प्रतिपदा तिथिसे नवसंवत्सरका आरम्भ होता है, यह अत्यन्त पवित्र तिथि है। इसी तिथिसे पितामह ब्रह्माने सृष्टिनिर्माण प्रारम्भ किया था—

चैत्रे मासि जगद् ब्रह्मा ससर्ज प्रथमेऽहनि।
शुक्लपक्षे समग्रे तु तदा सूर्योदये सति॥

इस तिथिको रेवती नक्षत्रमें, विष्कुम्भ योगमें दिनके समय भगवान्‌के आदि अवतार मत्स्यरूपका प्रादुर्भाव भी माना जाता है—

कृते च प्रभवे चैत्रे प्रतिपच्छुक्लपक्षगा।
रेवत्यां योगविष्कुम्भे दिवा द्वादशनाडिकाः॥
मत्स्यरूपकुमार्यां च अवतीर्णो हरिः स्वयम्।

(स्मृतिकौस्तुभ)

युगोंमें प्रथम सत्ययुगका प्रारम्भ भी इस तिथिको हुआ था। यह तिथि ऐतिहासिक महत्त्वकी भी है, इसी दिन सम्राट् चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यने शकोंपर विजय प्राप्त की थी और उसे चिरस्थायी बनानेके लिये विक्रम-संवत्‌का प्रारम्भ किया था।

इस दिन प्रातः नित्यकर्म करके तेलका उबटन लगाकर स्नान आदिसे शुद्ध एवं पवित्र होकर हाथमें गन्ध, अक्षत, पुष्प और जल लेकर देश-कालके उच्चारणके साथ निम्नलिखित संकल्प करना चाहिये—

'मम सकुटुम्बस्य सपरिवारस्य स्वजनपरिजन-सहितस्य वा आयुरारोग्यैश्वर्यादिसकलशुभ-फलोत्तरोत्तराभिवृद्ध्यर्थं ब्रह्मादिसंवत्सरदेवतानां पूजनमहं करिष्ये।'

—ऐसा संकल्पकर नयी बनी हुई चौरस चौकी या बालूकी वेदीपर स्वच्छ श्वेतवस्त्र बिछाकर उसपर हल्दी या केसरसे रँगे अक्षतसे अष्टदलकमल बनाकर उसपर ब्रह्माजीकी सुवर्णमूर्ति स्थापित करे। गणेशाम्बिका-पूजनके पश्चात् **'ॐ ब्रह्मणे नमः'** मन्त्रसे ब्रह्माजीका आवहनादि षोडशोपचार पूजन करे।

पूजनके अनन्तर विघ्नोंके नाश और वर्षके कल्याणकारक तथा शुभ होनेके लिये ब्रह्माजीसे निम्न प्रार्थना की जाती है—

भगवंस्त्वत्प्रसादेन वर्षं क्षेममिहास्तु मे।
संवत्सरोपसर्गा मे विलयं यान्त्वशेषतः॥

पूजनके पश्चात् विविध प्रकारके उत्तम और सात्त्विक पदार्थोंसे ब्राह्मणोंको भोजन करानेके बाद ही स्वयं भोजन करना चाहिये।

इस दिन पंचांग-श्रवण किया जाता है। नवीन पंचांगसे उस वर्षके राजा, मन्त्री, सेनाध्यक्ष आदिका तथा वर्षका फल श्रवण करना चाहिये। सामर्थ्यानुसार पंचांग-दान करना चाहिये तथा प्याऊ (पौसला)-की स्थापना करनी चाहिये। आजके दिन नया वस्त्र धारण करना चाहिये तथा घरको ध्वज, पताका, बन्दनवार आदिसे सजाना चाहिये। आजके दिन निम्बके कोमल पत्तों, पुष्पोंका चूर्ण बनाकर उसमें काली मिर्च, नमक, हींग, जीरा, मिस्री और अजवाइन डालकर खाना चाहिये, इससे रुधिर-विकार नहीं होता और आरोग्यकी प्राप्ति होती है। इस दिन नवरात्रके लिये घट-स्थापन और तिलकव्रत भी किया जाता है। इस व्रतमें यथासम्भव नदी, सरोवर अथवा घरपर स्नान करके संवत्सरकी मूर्ति बनाकर उसका **'चैत्राय नमः'**, **'वसन्ताय नमः'** आदि नाम-मन्त्रोंसे पूजन करना चाहिये। इसके बाद विद्वान् ब्राह्मणका पूजन-अर्चन करना चाहिये।

'नामु राम को कलपतरु'

(श्रीगजाननजी पाण्डेय)

एक बहुत लोकप्रिय भजन है—***'जय जय राम, जय सियाराम, दो अक्षरका प्यारा नाम, राम नामके जपनेसे ही बन जाते सब बिगड़े काम।'***

कितनी सीधी एवं सच्ची बात इस भजनमें आयी है कि यदि हमें इस भवसागरसे पार उतरना है तो 'राम' के नामको दृढ़तासे अपने जीवनका आधार बना लेना होगा। तुलसीदासजी अपना उदाहरण देते हुए, 'राम' का नाम लेनेसे 'कल्याण' की बात कहते हैं।

नामु राम को कलपतरु कलि कल्यान निवासु।
जो सुमिरत भयो भाँग तें तुलसी तुलसीदासु॥

(रा०च०मा० १।२६)

अर्थात् कलियुगमें रामका नाम कल्पतरु (मनचाहा पदार्थ देनेवाला) और कल्याणका निवास (मुक्तिका घर) है, जिसको स्मरण करनेसे भाँग-सा (निकृष्ट) तुलसीदास तुलसीके समान पवित्र हो गया।

अमूल्य मानव जीवनकी सार्थकता इसमें है कि हम सत्कर्मद्वारा सर्वोच्च लक्ष्य अर्थात् ईश्वरप्राप्तिको अपने जीवनका लक्ष्य बनायें, अन्यथा यदि तुच्छ बातोंमें, भौतिक सुख-सुविधाओंके जालमें फँसकर, यदि हमने इस जीवनको यूँ ही गवाँ दिया तो हमारे हाथ क्या लगेगा?

इस दोहेमें इस ओर संकेत किया गया है—

हरि माया कृत दोष गुन बिनु हरि भजन न जाहिं।
भजिअ राम तजि काम सब अस बिचारि मन माहिं॥

(रा०च०मा० ७।१०४क)

श्रीहरिकी मायाके द्वारा रचे हुए दोष और गुण श्रीहरिके भजन बिना नहीं जाते। मनमें ऐसा विचारकर, सब कामनाओंको छोड़कर (निष्काम भावसे) श्रीरामजीका भजन करना चाहिये।

दुर्मार्गसे कमाई हुई रकम, सन्तोष नहीं देती और न धनसे सुख खरीदा जा सकता है, इसलिये कहा गया है कि 'सन्तोषरूपी धनके आगे, सभी प्रकारके धन व्यर्थ हैं।' यदि सारी सुख-सुविधाएँ होनेके बावजूद मनमें शान्ति नहीं है तो वह दौलत किस कामकी?

अतः हमें अच्छे दिनोंमें भी ईश्वरको नहीं भूलना चाहिये, ताकि दुःख ही क्यों हो?

दुःख में सुमिरन सब करे सुख में करे न कोय।
जो सुख में सुमिरन करे तो दुःख काहे को होय॥

(कबीरदास)

अतः मनमें ईश्वरके प्रति अटूट श्रद्धा और विश्वास हो और सत्कर्मका साथ हो तो कोई बाधा हमारा मार्ग नहीं रोक पायेगी। इसलिये तुलसीदासजी इस जीवके उद्धारके लिये संजीवनी मन्त्र बता रहे हैं कि—

राम नाम मनिदीप धरु जीह देहरीं द्वार।
तुलसी भीतर बाहेरहुँ जौं चाहसि उजिआर॥

(रा०च०मा० १।२१)

अर्थात् यदि तू भीतर और बाहर दोनों ओर उजाला चाहता है तो मुखरूपी द्वारकी जीभरूपी देहलीपर रामनामरूपी मणि-दीपकको रख।

भारत संतोंकी भूमि है। यहाँ अनेक महापुरुषोंने जन्म लिया है। उनका जीवन हमारे लिये प्रकाश-स्तम्भके समान है।

गीताका सार यही है कि 'जो भी होता है, हमारे अच्छेके लिये होता है।' इसपर हमारी आस्था बनी रहे अर्थात् हम जैसे भी हैं, सूत्र (डोरी) उस ईश्वरके हाथमें दे दें तो वह हमें उबार लेगा।

अतः हमें अपने धर्मका पालन करते हुए, बुराईसे दूर रहना है। राम भजनमें, आलस्यका परित्याग करना है और उसकी शरणमें जाकर ही इस जीवको मुक्ति मिल सकती है। तब ईश्वरके रूपमें हमारा पथ-प्रदर्शन करते हुए, इस जीवनको निष्कण्टक बनायेंगे, इसमें तनिक सन्देह नहीं है।

गुप्त नवरात्र

(श्रीकौशलजी पाण्डेय)

माघमासके शुक्लपक्षकी प्रथम नौ तिथियाँ गुप्त नवरात्र कही जाती हैं।

एक वर्षमें कुल चार नवरात्र होते हैं, जिनमेंसे सामान्यत: दो नवरात्रियोंके बारेमें सबको पता रहता है, पर शेष दो गुप्त नवरात्र हैं।

माँ दुर्गाकी आराधना वैसे तो प्रत्येक दिन की जानी चाहिये, लेकिन नवरात्रमें देवीकी पूजा का विशेष महत्त्व है। चैत्र और आश्विनमासके शुक्लपक्षकी प्रतिपदासे नवमीतक नौ दिनोंमें देवीके नौ रूपोंकी आराधनाका विधान है। इन नवरात्रोंको वासन्तिक नवरात्र और शारदीय नवरात्रके रूपमें जाना जाता है।

इनके अलावा भी सालमें दो नवरात्र ऐसे आते हैं, जिनमें माँ दुर्गाकी दस महाविद्याओंकी पूजा-अर्चना की जाती है। तंत्र-विद्यामें आस्था रखनेवाले लोगोंके लिये यह नवरात्र बहुत महत्त्व रखते हैं।

इन नवरात्रको गुप्त नवरात्र कहा जाता है, आषाढ़ और माघमासके शुक्लपक्षकी प्रतिपदासे नवमीतक नवरात्रको गुप्त नवरात्र कहा जाता है। गुप्त नवरात्रका समय शाक्त एवं शैव-धर्मावलंबियोंके लिये तन्त्र साधनाओंके लिये अधिक शुभ होता है। तन्त्र-साधकोंके लिये यह समय महत्त्वपूर्ण है, इन दिनों दस महाविद्याकी साधना कल्याणकारी सिद्ध होगी। जो मुक्तिका मार्ग बताती है, उसे 'विद्या' कहते हैं और जो भोग और मोक्ष दोनों देती है; उसे महाविद्या कहते हैं। दस महाविद्या इस प्रकार हैं—इन महाविद्याओंके प्रकट होनेकी कथा महाभागवत-देवीपुराणमें वर्णित है। इनका नाम तथा कृपाफल कुछ ऐसा है—

१-काली—दस महाविद्याओं में यह प्रथम है। कलियुगमें इनकी पूजा-अर्चनासे शीघ्र फल मिलता है।

२-तारा—सर्वदा मोक्ष देनेवाली और तारनेवालीको ताराका नाम दिया गया है। सबसे पहले महर्षि वसिष्ठने माँ ताराकी पूजा की थी। आर्थिक उन्नति और बाधाओंके निवारणहेतु माँ तारा महाविद्याका महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसकी सिद्धिसे साधककी आयके नित्य नये साधन बनते हैं। जीवन ऐश्वर्यशाली बनता है। इसकी पूजा गुरुवारसे आरम्भ करनी चाहिये। इससे शत्रुनाश, वाणी-दोष-निवारण और मोक्षकी प्राप्ति होती है।

३-छिन्नमस्ता—माँ छिन्नमस्ताका स्वरूप गोपनीय है। इनका सर कटा हुआ है। इनके कबन्धसे रक्तकी तीन धाराएँ निकल रही हैं। जिसमें-से दो धाराएँ उनकी सहेलियाँ और एक धारा स्वयं देवी पान कर रही हैं। चतुर्थ संध्याकालमें छिन्नमस्ताकी उपासनासे साधकको सरस्वतीकी सिद्धि हो जाती है। राहु इस महाविद्याका अधिष्ठाता ग्रह है।

४-त्रिपुरभैरवी—आगम ग्रन्थोंके अनुसार त्रिपुरभैरवी एकाक्षररूप हैं। शत्रु-संहार एवं तीव्र तन्त्र-बाधा-निवारणके लिये भगवती त्रिपुरभैरवी महाविद्या-साधना बहुत महत्त्वपूर्ण मानी जाती है। इससे साधकके सौन्दर्यमें निखार आ जाता है। इसका रंग लाल है और यह लाल रंगके वस्त्र पहनती हैं। गलेमें मुण्डमाला है तथा कमलासनपर विराजमान है। त्रिपुरभैरवीका मुख्य लाभ बहुत कठोर साधनासे मिलता है।

५-धूमावती—धूमावतीका कोई स्वामी नहीं है। इसकी उपासनासे विपत्तिनाश, रोग-निवारण तथा युद्धमें विजयकी प्राप्ति होती है।

६-बगलामुखी—बगलामुखी शत्रु-बाधाको पूर्णत: समाप्त करनेके लिये बहुत महत्त्वपूर्ण साधना है। इस विद्याके द्वारा दैवी प्रकोपकी शान्ति, धन-धान्य-प्राप्ति, भोग और मोक्ष दोनोंकी सिद्धि होती है। इसके तीन प्रमुख उपासक ब्रह्मा, विष्णु एवं भगवान् परशुराम रहे हैं। परशुरामजीने यह विद्या द्रोणाचार्यजीको दी थी और देवराज इन्द्रके वज्रको इसी बगला-विद्याके द्वारा

निष्प्रभावी कर दिया था। युधिष्ठिरने भगवान् कृष्णके परामर्शपर कौरवोंपर विजय प्राप्त करनेके लिये बगलामुखी देवीकी ही आराधना की थी।

७-षोडशी महाविद्या—शक्तिकी सबसे मनोहर सिद्ध देवी हैं। इनके ललिता, राजराजेश्वरी महात्रिपुर सुन्दरी आदि अनेक नाम हैं। षोडशी साधनाको राजराजेश्वरी इसलिये भी कहा जाता है; क्योंकि यह अपनी कृपासे साधारण व्यक्तिको भी राजा बनानेमें समर्थ हैं। इनमें षोडश कलाएँ पूर्णरूपसे विकसित हैं, इसलिये इनका नाम माँ षोडशी है। इनकी उपासना श्रीयन्त्रके रूपमें की जाती है। यह अपने उपासकको भक्ति और मुक्ति दोनों प्रदान करती हैं। बुध इनका अधिष्ठातृ ग्रह है।

८-भुवनेश्वरी—महाविद्याओंमें भुवनेश्वरी महाविद्याको आद्याशक्ति कहा गया है। माँ भुवनेश्वरीका स्वरूप सौम्य और अंग कान्तिमय है। माँ भुवनेश्वरीकी साधनासे मुख्य रूपसे वशीकरण, वाक्-सिद्धि, सुख, लाभ एवं शत्रुओंपर विजय प्राप्त होती है। पृथ्वीपर जितने भी जीव हैं, सबको इनकी कृपासे अन्न प्राप्त होता है। इसलिये इनके हाथमें शाक और फल-फूलके कारण इन्हें माँ 'शाकम्भरी' नामसे भी जाना जाता है। चन्द्रमा इनका अधिष्ठातृ ग्रह है।

९-मातंगी—इस नौवीं महाविद्याकी साधनासे सुखी गृहस्थ जीवन, आकर्षक और ओजपूर्ण वाणी तथा गुणवान् पति या पत्नीकी प्राप्ति होती है। इनकी साधना वाममार्गी साधकोंमें अधिक प्रचलित है।

१०-कमला—माँ कमला कमलके आसनपर विराजमान रहती हैं। श्वेत रंगके चार हाथी अपनी सूँड़ोंमें जलभरे कलश लेकर इन्हें स्नान कराते हैं। शक्तिके इस विशिष्ट रूपकी साधनासे दरिद्रताका नाश होता है और आयके स्रोत बढ़ते हैं। जीवन सुखमय होता है। यह दुर्गाका सर्वसौभाग्य रूप है। जहाँ कमला हैं, वहाँ विष्णु हैं। शुक्र इनका अधिष्ठातृ ग्रह है।

इन महाविद्याओंकी उपासनाके फलके रूपमें कहा गया है कि पूर्वकालमें साधक यदि दुराचारी भी रहा हो तो सत्संगादिके प्रभावसे भगवतीके प्रति अनन्यता हो जानेसे उसके पापोंका प्रक्षालन हो जाता है और उसकी मुक्ति हो जाती है—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
सोऽपि पापविनिर्मुक्तो मुच्यते भवबन्धनात्॥

गुप्त नवरात्र पूजा-विधि

मान्यतानुसार गुप्त नवरात्रके दौरान अन्य नवरात्रोंकी तरह ही पूजा करनी चाहिये। नौ दिनोंके उपवासका संकल्प लेते हुए प्रतिपदा यानी पहले दिन घटस्थापना करनी चाहिये। घटस्थापनाके बाद प्रतिदिन सुबह और शामके समय माँ दुर्गाकी पूजा करनी चाहिये। अष्टमी या नवमीके दिन कन्या-पूजनके साथ नवरात्र-व्रतका उद्यापन करना चाहिये।

गुप्त नवरात्रका महत्त्व

देवीभागवतके अनुसार जिस तरह वर्षमें चार बार नवरात्र आते हैं और जिस प्रकार नवरात्रमें देवीके नौ रूपोंकी पूजा की जाती है, ठीक उसी प्रकार गुप्त नवरात्रमें दस महाविद्याओंकी साधना की जाती है।

गुप्त नवरात्र विशेषकर तान्त्रिक क्रियाएँ, शक्ति-साधना, महाकाल-उपासना आदिसे जुड़े लोगोंके लिये विशेष महत्त्व रखती है। इस दौरान देवी भगवतीके साधक बेहद कठिन नियमके साथ व्रत और साधना करते हैं। इस दौरान लोग लम्बी साधना करके दुर्लभ शक्तियोंकी प्राप्ति करनेका प्रयास करते हैं।

गुप्त नवरात्रकी प्रमुख देवियाँ

गुप्त नवरात्रके दौरान कई साधक महाविद्या (तन्त्र-साधना)-के लिये माँ काली, तारादेवी, त्रिपुरसुन्दरी, भुवनेश्वरी, माता छिन्नमस्ता, त्रिपुरभैरवी, माँ धूमावती, माता बगलामुखी, मातंगी और कमलादेवीकी पूजा करते हैं।

भागवतकी आत्मा—चतुःश्लोकी

(डॉ० श्रीयुत श्रीभागवतशरणजी मिश्रा)

बदरीनाथ धामके समीप माणा गाँवमें स्थित व्यास गुफामें महर्षि वेदव्यास वेदोंका विभाजन, पुराणोंका प्रणयन और पंचम वेदके नामसे विख्यात महाभारतकी रचना करनेके पश्चात् उदास बैठे थे। तभी वहाँ श्रीनारदजी पहुँचे और

उन्होंने उनसे उदासीका कारण पूछा।

वेदव्यासजीने कहा कि इतने ग्रन्थोंका निर्माण करनेके बाद भी मुझे शान्ति नहीं मिल रही है।

नारदजीने कहा—'महर्षे! यहाँ आपसे थोड़ी भूल हुई, आपने पुराणोंमें ज्ञानयोग समझाया, कर्मयोग समझाया। कहीं-कहीं ज्ञानको बहुत महत्त्व दिया है, परंतु ज्ञान और कर्म दोनों श्रीकृष्ण-प्रेमसे सफल होते हैं। आपने प्रेममें पागल होकर विस्तारपूर्वक श्रीकृष्णकी लीला-कथा नहीं कहीं, इसलिये आपका मन अशान्त है।'

व्यासजीने मार्गदर्शन करनेका अनुरोध किया। तब नारदजीने बताया—क्षीरसागरमें शेषनागकी शय्यापर लेटे हुए भगवान् विष्णुके नाभिकमलसे उत्पन्न ब्रह्माजीको विष्णुजीने सृष्टि करनेका आदेश दिया तथा अपने ऐश्वर्य एवं विस्तारके बारेमें बताया—

१-सृष्टिके पूर्व, मध्य तथा अन्तमें मैं ही रहता हूँ।

२-सृष्टिके बाद निर्मित सभी वस्तुएँ केवल मेरी माया होंगी।

३-सृष्टिमें निर्मित सभी वस्तुओंमें मैं उपस्थित रहूँगा, पर दिखायी नहीं दूँगा।

४-उपर्युक्त बातोंके सच्चे विश्लेषणसे ही शुद्ध ज्ञानकी प्राप्ति होगी।

यह प्रकरण तथा सभी बातें मेरे पिता श्रीब्रह्माजीने स्वयं बतायीं। इसलिये इन्हें ध्यानमें रखकर सरल भाषामें ईश्वरके ऐश्वर्य तथा विस्तारके बारेमें आप एक और पुराणका निर्माण करें, जिससे सभी लोग लाभान्वित हों।

इसीके पश्चात् व्यासजीने श्रीमद्भागवत-महापुराणकी रचना प्रारम्भ की और दूसरे स्कन्धके नौवें अध्यायमें इस प्रकरणका उल्लेख किया, इन्हीं चार श्लोकोंको चतुःश्लोकी भागवत कहा जाता है।

इन चार श्लोकोंका ही विस्तार पूरा पुराण है, जिसे बहुत ही रोचक ढंगसे व्यासजीने वर्णन किया है।

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद् यत् सदसत्परम्।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम्॥
ऋतेऽर्थं यत् प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि।
तद् विद्यादात्मनो मायां यथाऽऽभासो यथा तमः॥
यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु।
प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम्॥
एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनाऽऽत्मनः।
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत् स्यात् सर्वत्र सर्वदा॥

(श्रीमद्भा० २।९।३२—३५)

इसे भागवतका अमृत तथा भागवतकी आत्मा भी कहा जाता है।

पहले श्लोककी व्याख्या—सृष्टिके पूर्व केवल मैं था। सारे सूक्ष्म तथा स्थूल तथा इनका कारण अज्ञान भी मैं ही हूँ। जहाँ सृष्टि नहीं है, वहाँ भी मैं हूँ। सृष्टिके रूपमें जो कुछ प्रतीत होता है, वह भी मैं ही हूँ। सृष्टिके बाद जो बचा रहेगा, वह भी मैं ही हूँ।

इन विचारोंको जनमानसमें स्थापित करनेके लिये अनेक कथाएँ भागवत-पुराणमें व्यासजीने लिखी हैं। कुछ उद्धरण तथा उदाहरण निम्न हैं—१-भगवान्‌के दस अवतारोंकी कथाएँ, २-द्रौपदीके चीर-हरणकी कथा, ३-गज-ग्राहकी कथा, ४-रासलीलाकी कथा, ५-नृसिंह-

अवतारकी कथा इत्यादि।

इस प्रकार पूरा पुराण कथाओंसे भरा है, जो सर्वत्र भगवान्‌की उपस्थितिको उजागर करती हैं।

द्वितीय श्लोककी व्याख्या—सृष्टिमें उपस्थित सभी वस्तुएँ वास्तविक होते हुए भी उसी प्रकार मिथ्या हैं, जैसे दो चन्द्रमाओंकी उपस्थिति। ये सारी वस्तुएँ मेरी माया हैं, वास्तविक नहीं।

१-जैसे अन्धकार तथा प्रकाश दोनों मेरी माया है, अन्धकारमें प्रकाश विलुप्त तथा प्रकाशमें अन्धकार विलुप्त हो जाता है, २-सभी सांसारिक सम्बन्ध माता, पिता, पुत्र, पुत्री, पत्नी, मित्र तथा ब्रह्माण्ड सब मेरी माया है, ३-अशोक-वाटिकामें सीता मेरी माया है, ४-श्रीकृष्णकी बाल एवं सभी लीलाएँ माया हैं, ५-सूर्य, चन्द्रमा, तारे, सूर्योदय तथा सूर्यास्त सब मेरी माया है।

पूरे पुराणमें भगवान्‌की मायाकी कथाएँ हैं।

तृतीय श्लोककी व्याख्या—सृष्टिकी सारी वस्तुओंमें मैं आत्माके रूपमें उपस्थित हूँ, पर मैं दिखता नहीं हूँ; जैसे दूधमें मक्खनके रूपमें उपस्थित हूँ तथा आत्मदृष्टिसे उपस्थित नहीं भी हूँ।

१-द्रौपदीके चीरमें उपस्थिति, २-रासलीलामें हर गोपीके साथ उपस्थिति, ३-खम्भेसे नृसिंहभगवान्‌का प्राकट्य, ४-बलिकी पुत्री रत्नमालाका पूतनाके रूपमें पुनर्जन्म, ५-धुन्धकारीका उद्धार।

इस प्रकारकी अनेक रोचक कथाएँ विचारोंको प्रतिष्ठित करनेके लिये पुराणमें भरी हैं।

चतुर्थ श्लोककी व्याख्या—यह ब्रह्म है, यह ब्रह्म नहीं है, इसका विश्लेषण एवं संश्लेषण उपर्युक्त तीन श्लोकोंको ध्यानमें रखकर करनेवाला ही सच्चा ज्ञानी है।

१-कंस वध एवं वसुदेव-देवकीकी बन्धन-मुक्ति, २-गजकी मुक्ति एवं ग्राहका उद्धार, ३-पूतनाकी मुक्ति एवं पूतनाको मातृत्वका प्यार, ४-बलिका उद्धार एवं उसकी बेटीकी इच्छापूर्ति, ५-रासलीलामें संयोग एवं वियोग।

इस प्रकार विभिन्न तत्त्वोंका अर्थ गहन विचार, संश्लेषण एवं विश्लेषण करके ही असली ज्ञानकी प्राप्ति तथा अज्ञानका विनाश सम्भव है।

उपसंहार—१-इस प्रकार हम देखते हैं कि व्यासजीने सुन्दर कथाओंके द्वारा अज्ञानका नाश तथा ज्ञानका प्रकाश उत्पन्न किया, २-परीक्षितके मनसे मृत्युका भय समाप्त किया, ३-ईश्वरकी नाम-महिमाका प्रदर्शन, नारायण नामसे उद्धारकी ओर इशारा किया, ४-सृष्टिके प्रारम्भकी कथा तथा पुण्य और पापका परिणाम बताया, ५-स्वर्ग एवं नरकका वर्णन करके परोपकारकी ओर ध्यान दिलाया।

निःसन्देह चतुःश्लोकी भागवत श्रीमद्भागवत-महापुराणकी आत्मा तथा हृदय है।

बोध-कथा—

वरणीय दुःख है, सुख नहीं

महाभारतका युद्ध समाप्त हो चुका था। विजयी धर्मराज सिंहासनासीन हो चुके थे। अश्वत्थामाने पाण्डवोंका वंश ही नष्ट करनेके लिये ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया; किंतु जनार्दनने पाण्डवोंकी और उत्तराके गर्भस्थ शिशुकी भी उससे रक्षा कर दी। अब वे श्रीकृष्ण द्वारका जाना चाहते थे। इसी समय देवी उनके पास आयीं। वे प्रार्थना करने लगीं। बड़ी अद्भुत प्रार्थना की उन्होंने। अपनी प्रार्थनामें उन्होंने ऐसी चीज माँगी, जो कदाचित् ही कोई माँगनेका साहस करे। उन्होंने माँगा—'हे जगद्गुरो! जीवनमें बार-बार हमपर विपत्तियाँ ही आती रहें; क्योंकि जिनका दर्शन होनेसे जीव फिर संसारमें नहीं आता, उन आपका दर्शन तो उन (विपत्तियों)-में ही होता है।'

यह देवी कुन्तीका अपना अनुभव है। उनका जीवन विपत्तियोंमें ही बीता और विपत्तियाँ भगवान्‌का वरदान हैं, उनमें वे मंगलमय निरन्तर चित्तमें निवास करते हैं, यह उन्होंने भली प्रकार अनुभव किया। अब उनके पुत्रोंका राज्य निष्कण्टक हो गया। उन्हें लगा कि विपत्तिरूपी निधि अब हाथसे चली गयी। इसीसे श्यामसुन्दरसे विपत्तियोंका वरदान माँगा उन्होंने।

प्रमादी सुखी जीवन धिक्कारके योग्य है। धन्य है वह विपद्ग्रस्त जीवनका दुःखपूरित क्षण, जिसमें वे अखिलेश्वर स्मरण आते हैं। [श्रीमद्भागवत-महापुराण]

उपनिषदोंमें प्रणव-निरूपण

(डॉ० श्रीइन्द्रमोहनजी झा 'सच्चन')

प्रणव या 'ॐ'के जपयोगकी साधनाका विवेचन प्रायः सभी उपनिषदों एवं अन्य आध्यात्मिक योग-साधनात्मक ग्रन्थोंमें किया गया है। मुण्डकोपनिषद् (२।२।४)-में कहा गया है कि—

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्॥

अर्थात् 'प्रणव धनुष है, आत्मा तीर है, ब्रह्म उसका लक्ष्य है। इसे प्रमादरहित होकर, तीरकी भाँति तन्मय होकर बींधना चाहिये।' श्वेताश्वतरोपनिषद् (१।१४)-के शब्दोंमें साधक अपने शरीरको एक लकड़ी बनाये और प्रणवको दूसरी लकड़ी। ध्यानरूपी रगड़के अभ्याससे छिपी हुई आगके सदृश परमात्मदेवको देखे—

स्वदेहमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम्।
ध्याननिर्मथनाभ्यासाद् देवं पश्येन्निगूढवत्॥

छान्दोग्योपनिषद्में ओंकारकी स्तुतिसे अमर होनेका संकेत देते हुए कहा गया है—

'यदा वा ऋचमाप्नोत्योमित्येवातिस्वरत्येवꣳ सामैवं यजुरेष उ स्वरो यदेतदक्षरमेतदमृतमभयं तत्प्रविश्य देवा अमृता अभया अभवन्।' (१।४।४)

अर्थात् जब उपासक ऋग्वेदको पढ़ता है, तो ऊँचे स्वरमें ओम् बोलता है। इसी प्रकार सामवेद और यजुर्वेदको भी पढ़ता है। यही ओम् शब्द स्वर है। यह अक्षर, अमृत और अभय है। जो उपासक ऐसा जानकर ॐकी स्तुति करता है, वह उस स्वरमें प्रवेश करता है। जैसे देव उसमें प्रवेश करके अमर हो गये हैं, वैसे ही वह भी अमर हो जाता है।

'तैत्तरीय शीक्षावल्ली'के अष्टम अनुवाकमें ओंकारको ब्रह्मप्राप्तिका साधन बताते हुए कहा गया है—

ओमिति ब्रह्म। ओमितीदꣳसर्वम्। ओमित्येतदनुकृतिर्ह स्म वा अप्यो श्रावयेत्याश्रावयन्ति। ओमिति सामानि गायन्ति। ओꣳशोमिति शस्त्राणि शꣳसन्ति। ओमित्यध्वर्युः प्रतिगरं प्रतिगृणाति। ओमिति ब्रह्मा प्रसौति। ओमित्यग्निहोत्रमनुजानाति। ओमिति ब्राह्मणः प्रवक्ष्यन्नाह ब्रह्मोपाप्नवानीति। ब्रह्मैवोपाप्नोति॥

ओम् यह ब्रह्म है। ओम् यह सब कुछ है। ओम् अंगीकारका वाचक है। ओम् कहनेपर [ऋत्विज] मन्त्र सुनाते हैं। ओम शोम् कहकर शस्त्रों (ऋग्वेदके प्रार्थना-मन्त्रविशेष)-का पाठ करते हैं। ओम् कहकर (सोमयागमें) अध्वर्यु और यजुर्वेदी प्रतिगर (प्रोत्साहक मन्त्रविशेष) पढ़ता है। ओम् कहकर ब्रह्माको अनुज्ञा देता है। ओम् कहकर अग्निहोत्रकी अनुज्ञा देता है।

वेदाध्ययन करनेवाला ब्राह्मण ओम् उच्चारण करता हुआ कहता है—'मैं ब्रह्मको प्राप्त होऊँ और इस प्रकार वह ब्रह्मको अवश्य पा लेता है।'

ध्यानबिन्दूपनिषद् (१।१७)-के अनुसार प्रणवके एक मात्राके जपको अन्तरायरूप पापोंका नाशक, दो मात्राओंके दीर्घ जपको ऋद्धि-सिद्धियोंका प्रदायक तथा प्लुप्त जपको मोक्षका प्रदायक माना है। यथा—

ह्रस्वो दहति पापानि दीर्घः संपत्प्रदोऽव्ययः।
अर्धमात्रासमायुक्तः प्रणवो मोक्षदायकः॥

इनके उच्चारणके तीन प्रकार हैं—

'ओमोमोम्' इस प्रकार निरन्तर उच्चारणको ह्रस्व कहा गया है। ओम् ओम् ओम् इस प्रकार स्फुट उच्चारणको दीर्घ कहा जाता है। ओ३म् ओ३म् ओ३म् इस प्रकार 'ओ' का हृदयसे विशुद्धिचक्रतक उकारकी ध्वनि व्याप्त होकर विष्णु-ग्रन्थिका भेदन होता है। मकारकी ध्वनि कण्ठदेशसे आज्ञाचक्रतक व्याप्त होकर ब्रह्मग्रन्थिका भेदन होता है। इसके पश्चात् जिसे तुरीया मात्रा अथवा अर्धमात्रा कहा गया है, उसकी सूक्ष्म ध्वनियोंसे आत्मसाक्षात्कारकी अवस्था आती है। योगतत्त्वोपनिषद् (१३८-१३९)-में कहा गया है—

अकारे रेचितं पद्ममुकारेणैव भिद्यते॥
मकारे लभते नादमर्धमात्रा तु निश्चला।

अकारसे स्फुट होनेवाले हृत्पद्मका उकारसे भेदन होता है। मकारसे नादसिद्धि प्राप्त होती है और अर्धमात्रासे निश्चलावस्था प्राप्त होती है। प्रणवकी इस अर्धमात्राके सम्बन्धमें कहा गया है—

शिखा तु दीपसंकाशा तस्मिन्नुपरि वर्तते।
अर्धमात्रा तथा ज्ञेया प्रणवस्योपरि स्थिता॥

(ब्रह्मविद्योपनिषद्, मन्त्र ९)

अर्थात् जिस प्रकार दीपककी ज्वाला होती है, उसी प्रकार अर्धमात्रा प्रणवके ऊपर स्थित है। इसका उच्चारण तार स्वरके रूपमें किया जाता है, इसीलिये इसे तार भी कहा जाता है। इसके उच्चारणके सम्बन्धमें कहा गया है—

कांस्यघण्टानिनादस्तु यथा लीयति शान्तये।
ओङ्कारस्तु तथा योज्यः शान्तये सर्वमिच्छता॥

(ब्रह्मविद्योपनिषद्, मन्त्र १२)

जहाँ प्लुत उच्चारण होता है, उसे प्लुत कहा जाता है। नृसिंहपूर्वतापिन्युपनिषद्‌के तीसरे अध्यायमें ओंकारके उच्चारणका फल इस प्रकार बताया गया है—

यदि ह्रस्वा भवति सर्वं पाप्मानं दहत्यमृतत्वं च गच्छति यदि दीर्घा भवति महतीं श्रियमाप्नोत्यमृतत्वं च गच्छति यदि प्लुता भवति ज्ञानवान् भवत्यमृतत्वं च गच्छति।

अर्थात् 'ओंकारका जो ह्रस्व उच्चारण करता है, उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं, और वह अमृतत्वको प्राप्त होता है। ओंकारके दीर्घ उच्चारणसे जप करनेपर अत्यन्त लक्ष्मीवान्—धनधान्य और वैभवसे सम्पन्न हो जाता है और अमृतत्वको प्राप्त करता है। प्लुत उच्चारण करनेसे ज्ञानी होता है और अमृतत्व प्राप्त करता है।'

योगसाधना करनेवालेको जब ओंकारका समस्त क्रमसे उच्चारण करनेका अच्छा अभ्यास हो जाता है तो आगे उसे व्यस्तक्रमसे उच्चारण करनेकी विधि बतायी जाती है। अकार, उकार, मकार और तुरीयामात्रा—इस प्रकार व्यस्तक्रमसे इसे तीन मात्रा और चतुर्थ अनुस्वारको आधी मात्रा मानकर सार्धत्रयमात्रात्मक कहा जाता है।

ओंकारके व्यस्त उच्चारणमें अकारकी ध्वनि मूलाधारसे उत्थित होकर मणिपुरमें नाभिपर्यन्त व्याप्त होकर रुद्र-ग्रन्थिका भेदन करती है। नाभिसे ऊपर अर्थात् 'जिस प्रकार काँसेके घंटाकी ध्वनि धीरे-धीरे कम होकर विलीन हो जाती है, उसी प्रकार सभी प्रकारकी कामनापूर्तिके लिये ओंकारका प्रयोग करना चाहिये।' योगतत्त्वोपनिषद् (१।६३-६४)-के अनुसार साधकको चाहिये कि वह एकान्तमें बैठकर पहले किये हुए पापोंका नाश करनेके लिये प्लुत मात्रासे प्रणवका जप करे। यह मन्त्र सब पापोंको और सब प्रकारके दोषोंको दूर करनेवाला है—

ततो रहस्युपाविष्टः प्रणवं प्लुतमात्रया।
जपेत् पूर्वार्जितानां तु पापानां नाशहेतवे॥
सर्वविघ्नहरो मन्त्रः प्रणवः सर्वदोषहा।
एवमभ्यासयोगेन सिद्धिरारम्भसम्भवा॥

अतः साधकोंको प्रणव-चिन्तनके प्रमुख तत्त्वोंका ज्ञान प्राप्त करके उपासनामें आगे बढ़ना चाहिये, तभी इसके शास्त्रोक्त फल प्राप्त होनेमें सुगमता होगी तथा साधकको किसी योग्य सद्‌गुरुसे मन्त्रदीक्षा लेकर साधन मन्त्रका जप आरम्भ करना चाहिये; क्योंकि विशेष ज्ञान गुरुकृपासे ही प्राप्य है।

बोध-कथा—

सर्वोत्तम धन

महर्षि याज्ञवल्क्यकी दो स्त्रियाँ थीं। एकका नाम था मैत्रेयी और दूसरीका कात्यायनी। जब महर्षि संन्यास ग्रहण करने लगे, तब दोनों स्त्रियोंको बुलाकर उन्होंने कहा—'मेरे पीछे तुमलोगोंमें झगड़ा न हो, इसलिये मैं सम्पत्तिका बँटवारा कर देना चाहता हूँ।' मैत्रेयीने कहा—'स्वामिन्! जिस धनको लेकर मैं अमर नहीं हो सकती, उसे लेकर क्या करूँगी? मुझे तो आप अमरत्वका साधन बतलानेकी दया करें।'

याज्ञवल्क्यने कहा—'मैत्रेयी! तुमने बड़ी सुन्दर बात पूछी। वस्तुतः इस विश्वमें परम धन आत्मा ही है। उसीकी प्रियताके कारण अन्य धन, जन आदि प्रिय प्रतीत होते हैं। इसलिये यह आत्मा ही सुनने, मनन करने और जाननेयोग्य है। इस आत्मासे कुछ भी भिन्न नहीं है। ये देवता, ये प्राणीवर्ग तथा यह सारा विश्व—जो कुछ भी है, सभी आत्मा है। ये ऋग्वादि वेद, इतिहास, पुराण, उपनिषद्, श्लोक, सूत्र, मन्त्रविवरण और सारी विद्याएँ इस परमात्माके ही निःश्वास हैं।'

'यह परमात्म-तत्त्व अनन्त, अपार और विज्ञानघन है।' ऐसा उपदेश करके महर्षिने संन्यासका उपक्रम किया तथा उन्हींके उपदेशके आधारपर चलकर मैत्रेयीने भी परम कल्याणको प्राप्त कर लिया। [बृहदारण्यकोपनिषद्]

सरल जीवन ही सच्चा ज्ञान है

(श्रीदिलीपजी देवनानी)

ऐसा लगता है कि बड़ी-बड़ी ज्ञानकी बातोंमें उलझकर मनुष्य सहज और सरल जीवनको खो बैठता है। जैसे संसारकी उलझन है, वैसे ही यह भी है। सरलता और सच्चाईसे जीवन बिताना ही तो ज्ञान है। बहुत-से दृष्टान्त याद कर लेना, बहुत-से भजन याद कर लेना, यह तो दिमागपर बहुत बड़ा वजन लादना हुआ। जिन्हें प्रवचन करना हो उनके लिये यह बात है। अपनी मुक्तिके लिये बहुत-से शास्त्र पढ़नेकी जरूरत नहीं, गीताके किसी एक श्लोकको ही जीवनमें उतार लेनेसे ही काम बन जाता है। स्वामी विवेकानन्द कहा करते थे कि जो पाँच परखे हुए विचारोंको आत्मसात् करके अपना जीवन गठन करता है, वह उस व्यक्तिसे श्रेष्ठ है, जिसने पूरा ग्रन्थालय कण्ठस्थ कर लिया है। मैं अपने गुरुसे कहता था कि मुझे यह ग्रन्थ पढ़ना है, वह ग्रन्थ पढ़ना है, तब वे कहते थे कि 'बेटा! पूरा समुद्र तू थोड़े पी सकेगा। सच्चाईसे जीवन बिता, भगवान्‌का नाम ले, सबके प्रति सद्भावना रख और अपने धर्मका पालन कर। बस, इतनेसे ही तू भवसागर पार हो जायगा।'

एक व्यक्ति स्वामी विलासानन्दजीके पास आया और बोला कि स्वामीजी! एक पुस्तक लिखना चाहता हूँ, तब स्वामीजी बोले पहलेसे क्या कम पुस्तकें हैं, जो तुम और बोझ बढ़ाना चाहते हो। गीता है, रामायण है, वेद हैं, पुराण हैं—इनमेंसे कोई एक ही पढ़ लो तो कल्याण हो जाय।

शास्त्र पढ़नेसे हमारा कोई विरोध नहीं, परंतु इसकी अत्यधिक वासना थका देती है। श्रीउड़िया बाबाजी महाराज कहते थे कि 'शास्त्रोंके जंगलमें मत भटको।' कभी-कभी बहुत बड़ी-बड़ी ज्ञानकी बातोंमें उलझ जानेके कारण हम यह भूल जाते हैं कि हमारे लिये कौन-सी एक-दो बातें हैं, जो हम जीवनमें उतारकर अपना कल्याण कर सकें।

कठोपनिषद्‌में यह आया है कि—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो
न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्य-
स्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूꣳस्वाम्॥

यह आत्मा केवल प्रवचनसे नहीं मिलता, न मेधासे और न बहुत सुननेसे, बल्कि यह जिसका वरण करता है, उसके आगे अपना रहस्य प्रकट कर देता है।

शंकराचार्य भगवान्‌ने इसका भाष्य लिखते हुए यह कहा है कि केवल आत्मलाभके लिये प्रार्थना करनेवालेका ही यह आत्मा वरण करता है।

कबीर, सूर, नानक, मीरा, रैदास आदि संत ज्यादा पढ़े-लिखे न थे, परंतु ये सब भगवत्प्राप्त व्यक्ति थे। आज सारा संसार इनको श्रद्धासे सर झुकाता है।

भगवान् शंकराचार्य विवेकचूड़ामणि नामक ग्रन्थमें लिखते हैं—

वाग्वैखरी शब्दझरी शास्त्रव्याख्यानकौशलम्।
वैदुष्यं विदुषां तद्वद् भुक्तये न तु मुक्तये॥

वाणीका कौशल, शब्दोंका चमत्कार, शास्त्रकी व्याख्या करनेका कौशल—यह सब विद्वानोंका मनोरंजन है, इसका मोक्षसे सम्बन्ध नहीं है।

वाचिक ज्ञानी मत बनो, बातको सही समझो एवं अपने जीवनको श्रेष्ठ बनाओ। एक साधुकी डायरी देखी तो उसमें सिर्फ 'राम' नाम लिखा था, बाकी कुछ भी नहीं।

राजा पृथुने अन्तमें प्रजाजनोंको उपदेश देते हुए कहा कि अपने धर्मका पालन करो एवं भगवान्‌को याद करो। बस, इतनेसे ही कल्याण हो जायगा।

गीतामें भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं, अपने स्वाभाविक कर्मोंद्वारा भगवान्‌की पूजा करके मनुष्य परम सिद्धिको प्राप्त करता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि ईश्वरप्राप्तिका मार्ग बहुत ही सहज और सरल है, वह तो ज्ञानका अभिमान करनेवाले लोग बातको उलझा देते हैं और बड़े-बड़े व्याख्यानोंमें असल बात छोड़ बैठते हैं। गिद्ध उड़ता आकाशमें है, परंतु नजर मांसके टुकड़ेपर होती है, उसी प्रकार बात तो 'अहं ब्रह्मास्मि' की करते हैं, परंतु नजर कामिनी-कांचनपर रहती है। जीवनमें त्याग आना चाहिये, सच्चाई आनी चाहिये, सरलता आनी चाहिये।

आत्माकी खोज ही गीता है

(श्रीओमप्रकाशजी पोद्दार)

आत्मा ही वह दिव्यमणि (जीवनका मूलतत्त्व) है, जिसके प्रकाशमें संसारकी अविद्याका समूल नाश हो जाता है।

मनुष्य तनसे पशु, मनसे मनुष्य और आत्मासे ईश्वर है। यह संसार हमारी ईश्वरीय सत्ताद्वारा हमारे अपने ही महान् चित्तकी समय, स्पेस और पदार्थकी चतुर्आयामी कल्पनाका कमाल है, जिसमें हम अपने शरीरद्वारा प्रवेश करके इन्द्रियों और मनके द्वारा इसे भोगना चाहते हैं। इसीको हमारे शास्त्रोंमें **'तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्'** अर्थात् 'स्वयं रचकर स्वयं ही इसमें प्रवेश कर जाना' कहा है। शरीररूपमें हममें अहं आ जाना स्वाभाविक है और मन है तो मोहमें तो हम पड़ ही जाते हैं। फलतः संसार हमें सत्य लगने लग जाता है और आँखसे आत्मा नहीं दिखनेसे हमारा मन स्वतः ही पशुभावमें चला जाता है। हमें लगता है हमारा तन है, मन है और संसार तो है; लेकिन आत्माके अस्तित्वके बारेमें हम संशयमें पड़ जाते हैं। आत्माकी विस्मृति हो जानेसे हम जनमते-मरते रहते हैं और अनन्त कालतक संसारमें ही पड़े रहते हैं। बाहर निकल नहीं पाते। हमें संसारका निर्गम ही नहीं मिलता। अतः अब सबसे बड़ा प्रश्न हमारे सामने यह उपस्थित हो जाता है कि यदि आत्मा है तो वह कहाँ गयी। गीता कहती है कि आत्मा मरती नहीं है—**'नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः**'''' आदि-आदि। इसलिये गीता उस आत्माकी खोजमें लग जाती है। और आप गीता पढ़ेंगे तो पायेंगे कि गीता अपने मिशनमें सफल हो जाती है।

काल (समय), स्पेश और पदार्थ—ये तीनों इतने भारी भ्रम हैं, जिनमेंसे हमारी सोच बाहर निकल ही नहीं पाती है। तुलसीदासजीने इस भ्रमको पहचाना, इसलिये रामचरितमानसमें उत्तरकाण्डमें भगवान् राम काकभुशुण्डिजीके सामने अपनी इस मायाका बहुत रोचक ढंगसे संवरण (निराकरण) करते हैं। काकभुशुण्डिजी देखते हैं कि विराट् स्पेस सिर्फ और सिर्फ दो अंगुलकी दूरीमें सिमटकर रह जाता है, सृष्टिका सारा-का-सारा पदार्थ काकभुशुण्डिजीसहित भगवान्‌के मुँहमें समा जाता है और यह देखकर तो वे अत्यन्त आश्चर्यमें पड़ जाते हैं कि उनके स्वयंके द्वारा अनन्त कालका बिताया हुआ समय केवल कुछ पलमें ही घटा हुआ दिख जाता है।

पिछली सदीमें आईन्स्टाइनने प्रकाशकी गतिपर भिन्न-भिन्न प्रयोग करके यह सिद्ध कर दिया कि समय और स्पेस निरपेक्ष (Absolute) सत्य नहीं हैं, बल्कि सापेक्ष (Relative) सत्य हैं यानी सिकुड़ या फैल सकते हैं तथा पदार्थ भी सिर्फ एनर्जी (शक्ति)-का पुंजमात्र है। इन दोनों अर्थात् काकभुशुण्डि-आख्यान और आधुनिक विज्ञान दोनोंसे यह सिद्ध होता है कि संसारके तीनों ही घटक समय, स्पेस और पदार्थ असत्य होते हुए भी हमें इसलिये सत्य प्रतीत होते हैं; क्योंकि हमें अपने शरीर और इन्द्रियोंसे इनका अनुभव होता है। इसलिये आत्मा जिसमें न स्पेस है, न समय है, न पदार्थ है; सत्य होते हुए भी हमें सत्य प्रतीत नहीं होती। आत्माका यह अदृश्य 'सत्य' हमें कैसे दिखायी दे, इसी समस्याका हल गीता है।

विज्ञानकी नवीनतम खोजोंसे हमें अवगत करानेके लिये संसारके विभिन्न देशोंमें TED सम्मेलन आयोजित किये जाते हैं। ऐसे ही एक सम्मेलनमें मेडिकल साइंसके एक खोजकर्ताने बताया कि ऑपरेशन करनेके पहले मरीजको जो एनेस्थिसिया दी जाती है, वह दिमागको निश्चेष्ट नहीं करती, बल्कि दिमागमें एक ऐसा 'मूकशोर' (Silent Noise) मचा देती है, जिसमें दिमाग इतना व्यस्त हो जाता है कि शरीरकी सुधि ही 'भूल' जाता है। और तब डॉक्टर आरामसे ऑपरेशन कर देता है।

ठीक इसी प्रकार दृश्य संसारको ही सत्य मानकर हम उसमें डूब गये हैं। इसलिये अपनी ही आत्माको बिलकुल 'भूल' गये हैं। क्या आत्माकी यह प्रतिध्वनि गीताके इस श्लोकमें सुनायी नहीं देती—

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥

सिर्फ इन दो पंक्तियोंका अर्थ हम समझ जायँ तो पूरी गीता समझमें आ जायगी। प्रथम पंक्ति 'वैराग्य' और दूसरी पंक्ति 'ज्ञान' की है। जबकि शास्त्रोंमें 'ज्ञान' पहले आता है और 'वैराग्य' बादमें। लेकिन यहाँ ठीक उलटा है; क्योंकि भगवान् पहले हमें हमारी आत्माको संयम यानी वैराग्यद्वारा जगाये रखनेकी बात करते हैं कि औरोंकी देखा-देखी तुम भी मत सो जाना और उसके बाद मुनियोंके दृष्टान्तसे यह ज्ञान भी दे देते हैं कि जिस सांसारिकतामें दुनियावाले जगे हुए हैं, उसकी तरफसे अपनी आँखें बन्द रखो, वह तो वास्तवमें घोर रात्रि है। इस प्रकार गीताको शास्त्रीय ज्ञानकी आवश्यकता नहीं है। गीताको तो सिर्फ हमारा दृष्टिकोण सही करना है, जिससे 'आत्मा' हमारे 'ध्यान' में आ जाय। संसारको पूर्ण रूपसे (या आंशिक रूपसे ही) मिटा देना हम-जैसे क्षुद्रजीवके वशकी बात नहीं है। लेकिन गीता हमारे दृष्टिकोणको सही कर देती है। हमारे बुद्धिके टेलिस्कोपको घुमाकर उस कोणपर स्थिर कर देती है, जिसमें संसार तो बिलकुल मिट जाता है, लेकिन आत्मा 'फोकस' में आ जाती है।

अत: वह 'आत्मतत्त्व' जिसको आज हम भूल गये हैं, उसकी याद दिलाना ही गीताका मूल उद्देश्य है। गीता, यद्यपि ज्ञानका अथाह सागर है, लेकिन गीताका मूल उद्देश्य ज्ञान देना नहीं बल्कि अर्जुन ही नहीं, जन-जनको आत्माका प्रत्यक्ष अनुभव कराना है। इसीलिये भगवान्ने ज्ञान नहीं बल्कि 'ज्ञानयोग', कर्म नहीं बल्कि 'कर्मयोग' तथा ज्ञान और कर्म दोनोंकी पराकाष्ठा 'भक्तियोग' पर सबसे ज्यादा जोर दिया है।

ज्ञान और अज्ञान दोनोंसे मुक्त हुए बिना 'आत्मा' का दर्शन नहीं हो सकता, क्योंकि आत्मा सारे बन्धनोंसे मुक्त है। इसलिये शास्त्रोंका ज्ञान कितना भी हो जाय, उससे आत्माका ज्ञान कभी नहीं हो सकता, क्योंकि ब्रह्मके ज्ञानकी तुलनामें हमारा ज्ञान सदा अपूर्ण, नगण्य और तुच्छ ही नहीं बल्कि जड़ता है। अत: उसे तज देनेमें ही भलाई है। उससे चेतन आत्माका ज्ञान कभी नहीं हो सकता है। दूसरे यदि शास्त्रोंके ज्ञानसे ही आत्माका ज्ञान होता हो तो मूर्खको तो कभी आत्माका ज्ञान नहीं होगा, जबकि आत्मा तो ज्ञानी और मूर्ख दोनोंमें है। ज्ञानी हो या मूर्ख, निर्बल हो या बलवान्, आस्तिक हो या नास्तिक गीता सबके लिये है। इसीलिये आत्मज्ञानकी दिशामें अग्रसर होनेमें भगवान्ने वेदोंके ज्ञानको भी बाधा बताया है—'**त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।**' यह वेदोंकी अवमानना नहीं है, बल्कि वेदोंकी सबसे बड़ी प्रशंसा है। यह इस बातका प्रमाण है कि वेदोंसे बढ़कर कोई ज्ञान नहीं है। यदि वेदोंसे बड़ा कोई ज्ञान-शास्त्र होता तो भगवान् उसी शास्त्रका नाम लेते, वेदोंका नाम नहीं लेते। क्योंकि भगवान्का तात्पर्य यहाँ 'बड़े-से-बड़े ज्ञान' से है। महान् ज्ञानके पर्याय चूँकि वेद हैं, इसलिये वेदोंका उदाहरण दिया है।

ज्ञानके काँटेसे अज्ञानके काँटे (यानि संशय)-को निकाल देनेके बाद ज्ञान और अज्ञान दोनों काँटोंको फेंक देना चाहिये। ज्ञानके काँटेको सहेजकर रख लेनेसे मन सदा असहज ही रहता है। अत: अपनी सहज अवस्था यानि आत्मस्वरूपकी प्राप्ति नहीं हो सकती।

स्वस्थ शरीर, सही सोच और निर्मल मनमें ही आत्माकी अनुभूति जागती है। अर्जुनका शरीर स्वस्थ था, मन निर्मल था, लेकिन सोच सही नहीं थी। उसके सोचको सही दिशामें ले जानेका उपक्रम ही गीता है, जो अर्जुन ही नहीं हर युगमें हर व्यक्तिकी सोच सही दिशामें ले जानेमें सक्षम है। इसीलिये गीता मनुष्यकी शाश्वत मित्र है।

हर नकारात्मक विचारको निरस्त करना और हर सकारात्मक विचारको प्रशस्त करना गीताका स्वाभाविक गुणधर्म है। गीताजीमें भगवान् स्वयं बैठकर ज्ञान दे रहे हैं। इसलिये गीतामें अनन्त ज्ञान है, जिसका कोई पार नहीं पा सकता। पिछले पाँच हजार वर्षोंमें अनेक सन्त और विद्वानोंने जीवनभर गीताजीका अध्ययन किया, लेकिन गीताके ज्ञानका अन्त नहीं पा सके। गीतारूपी नावमें बैठकर वे निस्सन्देह भवसागर तर गये, क्योंकि वह बुद्धि धन्य है, जो ईश्वरके ध्यानमें सतत लगी हुई है। भगवान् स्वयं ऐसे ज्ञानियोंको अपना ही स्वरूप

मानकर उनकी अभ्यर्थना करते हैं। लेकिन गीताका करिश्मा, गीताजीका सत्त्व, गीताका वह सहज और सत्वर ज्ञान (Spontaneous knowledge) है, जो अर्जुनके बहाने हमें कह रहा है कि तपस्वीसे श्रेष्ठ कर्मठ व्यक्ति होता है, कर्मठसे श्रेष्ठ ज्ञानी होता है और ज्ञानीसे श्रेष्ठ योगी होता है। अतः तू योगी बन।

युद्ध छिड़नेके ठीक पहले कोई भी विवेकवान् व्यक्ति ज्ञानकी पाठशाला खोलकर नहीं बैठेगा। अतः भगवान्‌का (तात्कालिक) उद्देश्य सिर्फ अर्जुनको यह याद दिलाना था कि तुम वह नहीं हो जो तुम सोचते हो। ये योद्धागण भी वह नहीं हैं, जो तुम इनको समझ बैठे हो। भगवान् चाहते थे कि किसी भी तरह जल्द-से-जल्द अर्जुनको अपने असली स्वरूप, अपनी आत्माका पता चल जाय ताकि वह निर्द्वन्द्व भावसे लड़ सके और दैववश धर्मयुद्धके बहानेसे ही सही एक ही जगह युद्धकी इच्छासे ही एकत्र हुए (**समवेता युयुत्सवः**) आततायियोंका थोक भावमें नाश हो जाय। अर्जुनमें जबतक देहबुद्धि थी, तबतक वह अपने आपको, भीष्म, द्रोण आदिको, यहाँतक कि भगवान् कृष्णको भी देहतक ही सीमित समझे हुए था। आत्मचेतनाके आते ही वह अपनी भूलके लिये भगवान्‌से क्षमा माँगने लगता है कि मैं आजतक आपको साधारण सखा समझकर व्यवहार करता रहा, लेकिन आप तो परमपुरुष हो। आत्माका ज्ञान नहीं रहनेसे ही हमारे हृदयमें ईश्वरके प्रति मूढ़भाव रहता है। आत्माका अनुभव होते ही हमारे हृदयमें ईश्वर चेतना (God Consciousness) जाग्रत् हो जाती हैं। जैसे कितना ही घना कोहरा हो, लेकिन सूर्यकी एक किरण दिखते ही सूर्य हमें पूरा-का-पूरा दिख जाता है।

गीता कोरा दर्शन नहीं है, बल्कि मानवमात्रके कल्याणमें रत (**सर्वभूतहिते रतः**), उद्देश्यपरक, व्यावहारिक चिन्तन है। जिसको हम अंग्रेजीमें ऑब्जेक्टिव थिंकिंग (Objective Thinking) कह सकते हैं।

अव्यक्त आत्माके व्यक्त करनेकी मनोवैज्ञानिक विधि ही गीता है। अन्तर्यामी प्रभु पहले तो अर्जुनके रथको भीष्म और द्रोणाचार्यके ठीक सम्मुख ले जाकर जानबूझकर अर्जुनकी भावनाको उभाड़ते हैं और जब अर्जुन मन, बुद्धि और शरीरसे हार मानकर बैठ जाता है तो भगवान् मुसकराकर अत्यन्त द्रुत गतिसे उसको आत्माका रहस्य बतलाना प्रारम्भ कर देते हैं और उसकी सारी जिज्ञासाओंका युक्तिसंगत समाधान करते हुए छठे अध्यायतक उसको आत्माका पूरा-का-पूरा रहस्य और आत्माको जाननेकी योग-विधि समझाकर आत्माको जाननेका अनुपम फल बतला देते हैं। जबतक हमारे मन, बुद्धि और शरीरमें-से एक भी काम करता रहता है, तबतक हमें आत्माकी जरूरत ही नहीं पड़ती। जब ये तीनों फेल हो जाते हैं, तभी आत्माका रोल शुरू होता है। मनुष्य मरनेके लिये पैदा नहीं हुआ है, संसार-सागर पार करनेके लिये पैदा हुआ है। मनुष्य स्वयं ही अपना मित्र है और स्वयं ही अपना शत्रु है। यदि जीते जी आत्माको नहीं जान पाये, तो हम 'आत्महनन' की ओर बढ़ जाते हैं—

जो न तरै भवसागर नर समाज अस पाइ।
सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ॥

हम सब आज जाने-अनजाने इसी 'आत्महनन'की प्रक्रियामें लगे हुए हैं।

मनुष्यमात्रकी कामयाबीका रहस्य आत्मामें निहित है। यह रहस्य गीता हमें बतलाती है। लेकिन आज हम पुनः आत्माको बिलकुल भूल बैठे हैं। शरीरको ही सब कुछ समझे हुए हैं। विज्ञानने भोगोंके प्रचुर साधन सुलभ कर दिये हैं। लोगोंमें भोगोंको भोगनेकी होड़ मच गयी है। विज्ञानके विकासने आत्माके मार्गको अवरुद्ध कर दिया है। संसारमें अनात्मवाद बढ़ गया है। अनात्मवाद बढ़नेसे अनीश्वरवाद बढ़ गया है। अनीश्वरवादसे अनाचार बढ़ गया है। अनाचारसे एक ऐसी अपसंस्कृति आ गयी है, जिसमें कदाचार, दुराचार, भ्रष्टाचार आदि सब जायज है। दिशाहीन युवापीढ़ीकी असीम ऊर्जाका कुछ निहित स्वार्थोंने गलत उपयोग करके उन्हें आतंकवादकी तरफ मोड़ दिया है। मनुष्य पशु बन गया है। ऐसा नहीं है कि पशुमें आत्मा नहीं रहती, आत्मा पशुकी भी होती है, लेकिन पशुको अपनी आत्माका पता तब चलता है, जब वह मर जाता है। तब उसके पास दूसरा जन्म लेनेके

सिवाय कोई चारा नहीं रहता है। लेकिन मनुष्यको अपनी आत्माका पता जीते जी भी लग सकता है। यदि जीते जी मनुष्यको अपनी आत्माका पता चल जाय तो मनुष्य मरता नहीं है सिर्फ शरीर छोड़ता है। शरीरमें रहते हुए प्राण छोड़नेको हम मरना कहते हैं, जिसमें मर्मान्तक पीड़ा होती है, क्योंकि मन शरीर छोड़ना नहीं चाहता, लेकिन आत्मामें रहकर शरीर छोड़नेको हम 'मुक्ति' का नाम देते हैं। मृत्यु नहीं कह सकते, क्योंकि फिर उसे दूसरा जन्म नहीं लेना पड़ता, लेकिन संसारके भोगोंमें मनुष्यको इतना रस मिलने लगा है कि उसके लिये वह कुछ भी करनेके लिये तैयार है, यहाँतक कि मरने-मारनेके लिये भी तैयार है। हमारा मन भोगोंमें इतना रम गया है कि हमें आत्माकी बात ही नहीं सुहाती अत: गीताको पढ़नेकी कौन कहे, गीताके ऊपर नजर भी पड़ जाती है तो हम अपनी नजर फेर लेते हैं कि यह तो ज्ञानकी पुस्तक है, हमारे किस कामकी! लेकिन गीता कोरे ज्ञानकी पुस्तक नहीं, हमारी आत्माका विज्ञान है। गीता इतनी निर्दोष है कि हमें आत्माका 'सत्य' सिर्फ दिखाती है, हमपर आरोपित बिलकुल भी नहीं करती। आत्मा अपदार्थ है, इसलिये दिख जाय यही पर्याप्त है, अरोपित करनेकी आवश्यकता ही नहीं पड़ती। तभी तो अन्तमें अर्जुनको कह दिया **'यथेच्छसि तथा कुरु'**। आत्मतत्त्वकी खोज और उसे मनुष्यमात्रको दिखा देना—यह श्रीमद्भगवद्गीताकी कृपा है।

बोध-कथा—

भगवद्गीताका अद्भुत माहात्म्य

नर्मदाके तटपर माहिष्मती नामकी एक नगरी है। वहाँ माधव नामके एक ब्राह्मण रहते थे। उन्होंने अपनी विद्याके प्रभावसे बड़ा धन कमाया और एक विशाल यज्ञका आयोजन किया। उस यज्ञमें बलि देनेके लिये एक बकरा मँगाया गया। जब उसके शरीरकी पूजा हो गयी, तब बकरेने हँसकर कहा—'ब्रह्मन्! इन यज्ञोंसे क्या लाभ है। इनका फल विनाशी तथा जन्म-मरणप्रद ही है। मैं भी पूर्वजन्ममें एक ब्राह्मण था। मैंने समस्त यज्ञोंका अनुष्ठान किया था और वेदविद्यामें बड़ा प्रवीण था। एक दिन मेरी स्त्रीने बाल-रोगकी शान्तिके लिये एक बकरेकी मुझसे बलि दिलायी। जब चण्डिकाके मन्दिरमें वह बकरा मारा जाने लगा, तब उसकी माताने मुझे शाप दिया—'ओ पापी! तू मेरे बच्चेका वध करना चाहता है, अतएव तू भी बकरेकी योनिमें जन्म लेगा।' ब्राह्मणो! तदनन्तर मैं भी मरकर बकरा हुआ। यद्यपि मैं पशु-योनिमें हूँ, तथापि मुझे पूर्वजन्मोंका स्मरण बना है। अतएव इन सभी वैतानिक क्रियाजालसे भगवदाराधन आदि शुद्ध कर्म ही अधिक दिव्य हैं। अध्यात्ममार्गपरायण होकर हिंसारहित पूजा, पाठ एवं गीतादि सच्छास्त्रोंका अनुशीलन ही संसृति-चक्रसे छूटनेकी एकमात्र औषध है। इस सम्बन्धमें मैं आपको एक और आदर्शकी बात बताता हूँ।

'एक बार सूर्यग्रहणके अवसरपर कुरुक्षेत्रके राजा चन्द्रशर्माने बड़ी श्रद्धाके साथ कालपुरुषका दान करनेकी तैयारी की। उन्होंने वेद-वेदान्तोंके पारगामी एक विद्वान् ब्राह्मणको बुलवाया और सपुरोहित स्नान करने चले। स्नानादिके उपरान्त यथोचित विधिसे उस ब्राह्मणको कालपुरुषका दान किया।'

'तब कालपुरुषका हृदय चीरकर उसमेंसे एक पापात्मा चाण्डाल और एक निन्दात्मा चाण्डाली निकली। चाण्डालोंकी यह जोड़ी आँखें लाल किये ब्राह्मणके शरीरमें हठात् प्रवेश करने लगी। ब्राह्मणने मन-ही-मन गीताके नवम अध्यायका जप आरम्भ किया और राजा यह सब कौतुक चुपचाप देख रहा था। गीताके अक्षरोंसे समुद्भूत विष्णुदूतोंने चाण्डाल जोड़ीको ब्राह्मणके शरीरमें प्रवेश करते देख वे झट दौड़े और उनका उद्योग निष्फल कर दिया। इस घटनाको देख राजा चकित हो गया और उस ब्राह्मणसे इसका रहस्य पूछा। तब ब्राह्मणने सारी बात बतलायी। अब राजा उस ब्राह्मणका शिष्य हो गया और उससे उसने गीताका अध्ययन—अभ्यास किया।'

इस कथाको बकरेके मुँहसे सुनकर ब्राह्मण बड़ा प्रभावित हुआ और बकरेको मुक्तकर गीतापरायण हो गया।

हिमाचलकी आस्थाकी प्रतीक—श्रीबज्रेश्वरीदेवी

(श्रीउदयजी ठाकुर)

प्राचीन मन्दिर धर्म, संस्कृति और आस्थाके प्रतीक होते हैं। ऐसा ही एक मन्दिर हिमाचल प्रदेशमें स्थित बज्रेश्वरीदेवीका है। सतयुगकी देवसृष्टि एवं मानवसृष्टि और जलप्लावनके बाद पृथ्वीके उद्‌गमका इतिहास भगवती बज्रेश्वरी माताके संग जुड़ा हुआ है। बज्रेश्वरीदेवीके मूल मन्दिरकी स्थापना किसने की? इस बारेमें कोई प्रामाणिक जानकारी नहीं है। पौराणिक आख्यान और जनश्रुतिके आधारपर मन्दिरके निर्माण-सम्बन्धी विभिन्न उल्लेख प्राप्त होते हैं। चीनी यात्री ह्वेनसांगने अपने यात्रा-विवरणमें बज्रेश्वरी देवीके बारेमें विस्तृत वर्णन किया है। कहते हैं, सर्वप्रथम महमूद गजनवीने १००९ ई०में मन्दिरमें धन-सम्पत्तिकी प्रचुरताकी खबर पाकर आक्रमण किया था। महमूद गजनवीके एक मन्त्री उतबीलेने अपनी पुस्तकमें लिखा है कि इतनी धन-सम्पत्ति और हीरे-जवाहरात लूटकर ले जाये गये कि घोड़े और खच्चरतक कम पड़ गये। कहते हैं कि दिल्लीके तोमर वंशके राजा महिपालको माता बज्रेश्वरीदेवीने स्वप्नमें दर्शन देकर राजाको विशाल सेनाके साथ महमूद गजनवीपर आक्रमण करनेको कहा था। फिर राजा महिपालने महमूद गजनवीपर आक्रमणकर उसे आत्मसमर्पणके लिये मजबूर कर दिया था।

पन्द्रहवीं शताब्दीमें कटोच वंशीय राजा संसारचन्दद्वारा बज्रेश्वरी मन्दिरका पुनः निर्माण किया गया था। ऐसा इतिहासकारोंका कथन है। १४२९-३० ई०में उनके पिता राजा कर्मचन्द और पितामह मेघचन्दद्वारा लिखे प्राचीन शिलालेख बज्रेश्वरी मन्दिर-परिसरमें प्राप्त हुए थे। शारदा और देवनागरी लिपिमें ये शिलालेख हैं। सन् १६११ ई०में यूरोपके एक यात्री विलियम फिंचने मन्दिर अवलोकनकर मन्दिरकी देवीका नाम 'जय दुर्गा' लिखा है। यूरोपीय यात्री थॉमस कोयर्ट १६१५ ई० में और १६६६ ई० में फ्रांसिसी यात्री थैबलोटने मन्दिर देखकर अपने लेखमें मन्दिरकी बनावटके बारेमें विशेष वर्णन

किया है। सिक्खोंके शासनकालमें महाराजा रणजीत सिंहने स्वयं मन्दिरमें आकर श्रद्धापूर्वक सोनेका छत्र माता बज्रेश्वरीको भेंटमें चढ़ाया था। बीसवीं सदीमें ४ अप्रैल १९०५ को कांगड़ा क्षेत्रमें भीषण भूकम्प आया था, जिसमें मन्दिर पूर्णरूपसे ध्वस्त हो गया था। उल्लेखनीय है कि भूकम्पके समय मन्दिरके नजदीक स्थित तारादेवीके मन्दिरको कोई क्षति नहीं हुई।

पौराणिक सन्दर्भके अनुसार जब भगवान् शिव सतीकी मृतदेह अपने कन्धेपर लेकर ब्रह्माण्डका चक्कर लगाने लगे तो सतीका वाम वक्ष:स्थल यहाँ गिरनेपर यह स्थान बज्रेश्वरी शक्तिपीठके नामसे जाना जाने लगा। बज्रेश्वरी भगवती माता यहाँ पिण्डीरूपमें हैं। स्वर्णछत्रके नीचे पिण्डी विद्यमान है। शक्तिपीठकी अधिष्ठात्री देवी त्रिशक्ति काली, तारा और त्रिपुरा हैं। इनमें स्तनपीठाधिष्ठात्री श्रीबज्रेश्वरी मुख्य हैं। ऐसी मान्यता है कि मन्दिर स्थापनाके दिन जगह-जगहकी ३६० देवियाँ यहाँ उपस्थित हुई थीं।

बज्रेश्वरी देवीको प्राचीन कालमें बागेश्वरी देवी अर्थात् वाणीकी देवी कहते थे। मन्त्र, तन्त्र, पुराणकी देवी ही वाणीश्वरी है अर्थात् लोक-वाणीकी देवी हैं, धरा, विद्या, अपराजिता, योग, अध्यात्म विद्याकी अधिष्ठात्री देवी होनेसे कालान्तरमें ये 'बागेश्वरी' कहलायीं। प्राचीन समयमें भक्तजन अपनी जिह्वा काटकर देवीको अर्पण करते थे। कहते हैं कि कटी हुई जिह्वा पुन: स्वत: उसी दशामें फिर दिखायी पड़ती थी। इस अलौकिक चमत्कारका उल्लेख कांगड़ा जिलेके गजेटियर १९२४-२५ ई० में भी है। बज्रेश्वरीदेवी नौवीं शताब्दी और दसवीं शताब्दीतक तन्त्रविद्याके केन्द्र और जालन्धर पीठके नामसे प्रसिद्ध थीं। माता बज्रेश्वरी देवीका पूजा-विधान प्राचीन कालमें तान्त्रिक ही करते थे। सर्वप्रथम पहला पूजा करनेवाला पुजारी मन्दिर-द्वारके बाहरसे एक हजार जप करनेके पश्चात् मन्दिरके गर्भगृहमें प्रविष्ट होता था। आज भी पूजा-पद्धतिकी प्राचीन हस्तलिखित पाण्डुलिपि पुजारियोंके पास है।

आज भी प्राचीन परम्पराके अनुसार मन्त्र-स्तोत्रका जप और विधि-विधान है। प्राय: हिन्दुओंमें एकादशीके दिन चावल खाना वर्जित है, लेकिन यहाँ एकादशीके दिनमें भी देवीको चावल-दालका भोग लगता है। स्मरण हो कि बज्रेश्वरीदेवीकी पिण्डीमें रखा हुआ। त्रिशूल बहुत प्राचीन है और यह अष्टधातुका बना है। इसपर महाविद्याके दश मन्त्र अंकित हैं। त्रिशूलके नीचे दुर्गासप्तशतीका कवच अंकित है। यह सिद्ध त्रिशूल है।

यहाँ मन्दिरमें माघमासमें मकर-संक्रान्तिसे सात दिनतक विशेष पूजाका आयोजन होता है। कहते हैं कि जालन्धर दैत्यको मौतके घाट उतारनेके समय माताके शरीरमें अत्यधिक घाव हुए थे। देवताओंने तब माताके शरीरपर घृतका लेपकर उन्हें शीतलता प्रदान की थी। इसीलिये यहाँ एक सौ एक किलो देशी घी एक सौ एक बार जलमें भिगोकर मक्खन बनाकर माताके पिण्डीमें चढ़ाते हैं। यहाँ सभी तरहके मेवा-फल आदि सात दिनतक पिण्डीके ऊपर चढ़ानेकी परम्परा है। बादमें यही मेवा और फल प्रसादके रूपमें भक्तोंको वितरित कर दिया जाता है।

हिमाचल सरकारने प्रदेशके प्रमुख प्राचीन मन्दिरोंके अच्छे देखभाल, प्रबन्धन एवं चढ़ायी गयी धनराशिको राज्यके विकास-कार्योंमें लगानेहेतु हिन्दू सार्वजनिक धार्मिक संस्थानों एवं मूर्त विन्यास अधिनियम १९८४ पारित किया है। ४ नवम्बर१९८६ को सरकारी एवं गैर-सरकारी सदस्योंद्वारा गठित न्यासद्वारा ये प्राचीन मन्दिर संचालित होते हैं। जिला कांगड़ाके डिप्टी कमिश्नर मन्दिर-न्यास या ट्रस्टके आयुक्त होते हैं और उपमण्डल मैजिस्ट्रेट कांगड़ा सहायक आयुक्त होते हैं। गैर-सरकारी सदस्योंमें परम्परागत पुजारी और नगरके अन्य गणमान्य नागरिक होते हैं। मन्दिरमें चढ़ी दान-दक्षिणाका २० प्रतिशत भाग पूजा-अर्चनामें खर्च होता है, ४० प्रतिशत भाग पारम्परिक पुजारियोंको और ४० प्रतिशत राशि मन्दिरके खातेमें जमा करनेका विधान है, जो कर्मचारियोंके वेतन, श्रद्धालुओंकी सुविधा और विकास-कार्यमें व्यय होती है। यहाँ श्रद्धालुओंके लिये लंगरकी भी व्यवस्था रहती है।

संत-संस्मरण—

श्रीनारायणदासजी भक्तमाली 'मामाजी'

(परम श्रद्धेय श्रीराधेश्यामजी खेमका, पूर्वसम्पादक 'कल्याण')

श्रीनारायणदासजी भक्तमालीका उपनाम था 'मामाजी'। उन्हें सभी लोग मामाजीके नामसे पुकारते और वे इस नामसे प्रसन्न होते। श्रीनारायणदासजीका यह आन्तरिक भाव था कि जगज्जननी भगवती श्रीसीताजी उनकी बहन हैं और वे उनके भाई हैं। भगवान् राम सबके पिता हैं, जगज्जननी सीता सम्पूर्ण जगत्की माता होनेके कारण सम्बन्धकी दृष्टिसे श्रीनारायणदासजी सम्पूर्ण जगत्के मामा हो गये। यह सोचकर उन्हें प्रसन्नता होती कि जगज्जननीका भाई होनेके नाते मैं सबका मामा हूँ। इस प्रकार वे 'मामाजी' के नामसे प्रसिद्ध हो गये।

वे बक्सर-निवासी थे। बक्सर महर्षि विश्वामित्रजीकी तप:स्थली थी। विश्वामित्रजी तथा उनके कुछ शिष्य सन्त वहाँ तपस्या करते और कुछ राक्षसगण यदा-कदा उसमें विघ्न डालते। विश्वामित्रजीके प्रयाससे भगवान् राम वहाँ पधारे और उन्होंने ताड़का राक्षसीका वध किया तथा राक्षसोंके आतंकसे उस भूमिको मुक्त किया। श्रीमामाजीने इसी स्थानको अपना साधना-स्थल बनाया। यहाँ एक भव्य मन्दिरका निर्माण किया गया, जिसमें जगज्जननी भगवती जानकी, जो इनकी बहन थीं, उन्हें तथा अपने जवाँई (बहनोई) मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामको स्थापित किया। इनके साथ ही उनके परिकर, भाइयों तथा श्रीहनुमान्जी महाराजके विग्रह स्थापित किये गये। यह भव्य आश्रमका रूप बन गया, जहाँ सत्संग और भण्डारे आदि चलते रहते तथा उत्सव-महोत्सव होते रहते।

वर्षमें एक बार विवाह-पंचमी (मार्गशीर्ष सुदी ५)-पर भगवान्का विवाह-महोत्सव बड़ी धूम-धामसे बृहत् रूपमें मनाया जाता। इस महोत्सवके उपलक्ष्यमें सात दिनतक किसी सन्त अथवा किसी विशिष्ट कथावाचककी कथा होती। सायंकाल रामलीला होती। रामलीला किसी मण्डलीके द्वारा नहीं होती, पूज्य मामाजी स्वयं पात्रोंका चयन करते, अपने भावोंके अनुसार उन्हें लीलाके लिये तैयार करते। लीलाका संचालन प्राय: मामाजी स्वयं करते। लीलाके बीचमें स्वरचित पदोंका गायन करते। मामाजीके मार्मिक पदोंको सुनकर तथा भावपूर्ण लीला देखकर दर्शक भाव-विभोर हो जाते। विवाह-पंचमीके एक दिन पूर्व फुलवारी-लीला होती। विवाहके दिन भगवान्की बारात बड़े धूम-धामसे निकलती, इसमें कई हजार व्यक्ति शामिल होते। विवाह-पंचमीके दिन पूरी रात्रिमें भगवान् श्रीसीतारामका विवाह सम्पन्न होता। साथ-साथ पदोंका गायन होता, दूसरे दिन रामकलेवा तथा युगलसरकारकी विदाई (पहरावनी) होती। देशके विभिन्न भागोंसे सन्त-महात्मा तथा भक्तगण इसमें सम्मिलित होते। इस प्रकार विवाह-महोत्सव बड़े भावसे विशिष्ट रूपमें सम्पन्न होता।

पूज्य मामाजीमें एक विशेषता थी कि उन्हें भगवान्की लीलाओंका स्वाभाविक रूपमें चिन्तन होता था, जिन्हें वे भोजपुरी पदोंमें लिख लेते थे। वे पद बड़े सुन्दर और लालित्यपूर्ण होते थे। इस प्रकार कई हजार पदोंकी रचना पूज्य मामाजीकी लेखनीद्वारा स्वाभाविक रूपमें प्रसूत हुई। उन्होंने मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् रामका चरित्र, लीलापुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णका चरित्र, भक्तमालके आधारपर भक्तोंकी कथा तथा शिव-विवाह

आदि कई लीलाओंका वर्णन भोजपुरी भाषामें समारोहपूर्वक पद्यरूपमें प्रस्तुत किया।

उनके कुछ पदोंकी बानगी यहाँ प्रस्तुत है—

मिथिलामें सीताजीकी सखियाँ दुलहा-दुलहिनको देखकर आनन्दित होती हुई अपने भाव व्यक्त करती हैं—

सखि, देख ऽ कइसन अँगना में शोर भइले।
आजु मण्डप में अचरज अथोर भइले॥ सखि०॥
पहुना के परछाँही से, सियाजी भइली साँवरि।
सिय के छाया परत, पहुना अब तऽ गोर भइले॥ सखि०॥
अइसन अदला-बदली, कतहूँ, देखलीं ना सुनलीं।
जइसन आजु परिवर्तन घनघोर भइले॥ सखि०॥
दुलहा आसमानी रंग, दुलहिन रंग पियरी।
दूनो मिलि के हरियर हरियर चारों ओर भइले॥ सखि०॥

ससुरालमें सरहज और सालियाँ अपने पाहुनके साथ हँसी-ठिठोली करती हैं और प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूपमें गालियाँ भी सुनाती हैं, जो सुननेमें बड़ी मनोरम और आकर्षक होती हैं, इन पंक्तियोंमें पूज्य मामाजीने इसका सजीव चित्रण किया है—

राघव जू कोहवर बिहारी, ढिठाई माफ कीजै हमारी।
हम सब सिया जू की सखियाँ सहेलियाँ,
कोई सरहज कोई सारी, ढिठाई माफ कीजै हमारी॥ राघव०॥
द्वार की छेंकाई यहाँ नेग किछु लागै,
जल्दी से दीजै निकारी, ढिठाई माफ कीजै हमारी॥ राघव०॥
नेग नहिं लाये आप मुनि सँग आये,
बनि के कमण्डलधारी, ढिठाई माफ कीजै हमारी॥ राघव०॥
कर दें प्रबन्ध एक युक्ति आप कीजै,
बेंचहु बहिन-महतारी, ढिठाई माफ कीजै हमारी॥ राघव०॥
अथवा सिया के पग शीश झुकावहु,
बनि के प्रेम पुजारी, ढिठाई माफ कीजै हमारी॥ राघव०॥

मिथिलाकी सखियाँ रामजीसे और भी हँसी-मजाक करती हैं—

पाहुन धनुहिया वाले पड़े आज सखियन के पाले।
कौसल्या के छैला औ शान्ता के भैया,
शृंगी ऋषि के साले पड़े आज सखियन के पाले॥ पाहुन०॥
गोरे राजा दशरथ औं गोरी कौशल्या,
आप भये क्यों काले, पड़े आज सखियन के पाले॥ पाहुन०॥
बाहर से तो बड़े भोले भाले,
भीतर में नखड़े निराले, पड़े आज सखिअन के पाले॥ पाहुन०॥

पूज्य मामाजी जब भगवान् रामजीकी कथा कहते और उनके विवाहका वर्णन करते हुए भगवान् रामके प्रति मिथिलाकी नारियोंके व्यंग्य-वचन सुनाते तो श्रोतागण आनन्दसे लोट-पोट होने लगते।

एक बारकी बात है, अयोध्याके लक्ष्मणकिलाधीश श्रीसीतारामशरणजी महाराजने अयोध्यासे भगवान् श्रीरामकी बारात मिथिलामें जगज्जननी भगवती सीताकी जन्मस्थली सीतामढ़ी ले जानेका आयोजन किया। यह बारात बड़े समारोहपूर्वक चली, जिसमें अयोध्याके तथा अन्य स्थानोंके सन्त-महन्त भी शामिल हुए। मार्गमें स्थान-स्थानपर बारातका स्वागत-सत्कार होता गया तथा कीर्तन-भजन-सत्संग भी चलता रहा।

सीतामढ़ीमें लगभग तीन दिनोंतक यह कार्यक्रम चलता रहा। कीर्तन-भजन और सत्संगका विशेष आनन्द था। रात्रिमें भगवान्के विवाहकी लीला सम्पन्न हुई। इन सभी कार्यक्रमोंमें पूज्य मामाजी अग्रणी थे। उनके पद-गायन एवं कथा-प्रवचनसे एक समा बँध जाता था। सभी श्रोता मुग्ध हो जाते थे। वहाँका एक अद्भुत दृश्य था, पर इन सबका श्रेय पूज्य मामाजीको था।

पूज्य मामाजी भागवतकी कथा भी करते, शिव-चरित भी सुनाते। भूतभावन भगवान् सदाशिव अपनी बारातमें मृगछाला लपेटे, मुण्डमालासे युक्त डमरू-त्रिशूल धारण किये अपने स्वाभाविक रूपमें थे, परंतु विवाहके समय उन्होंने दूल्हेके रूपमें एक अलौकिक सुन्दर रूप धारण कर लिया, जिसकी सानी त्रिलोकमें नहीं थी। इसे देखकर सभी चकित थे। मामाजीने इस प्रसंगका व्यंग्यात्मक रूपमें कितना सुन्दर वर्णन किया है, जिसका नमूना देखिये—

बहु रूपिया गौरी के वर सखियो।
नहीं अइसन दूसर जादूगर सखियो॥ बहु०॥
छन भर पहिले विकट रूप देखलीं।
छन भर में भइले सुघर सखियो॥ बहु०॥
कहाँ गइले डमरु त्रिशूल मुण्डमाला।
(अब तो) झलके सुमाल मोती लर सखियो॥ बहु०॥

छिपि गइले जटा गङ्गधार मृगछाला।
(अब तो) मौर चमाचम पीताम्बर सखियो॥ बहु०॥

पूज्य मामाजीने लीलापुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाओंका भी पदोंमें वर्णन किया है। इसकी भी एक बानगी देखिये—

दूर दूर से क्यों मन मोहन अधिक अधिक तरसाते हो।
ज्यों ज्यों आऊँ निकट साँवरे पीछे हटते जाते हो॥
पहले तो सम्बन्ध बताकर बरबस खींच लिया मन को।
कथा ब्याज से बाध्य कर दिया सब विधि आत्म समर्पन को॥
मैं भी खिँचा हुआ-सा आया सुन सुन तेरे गुन गन को।
देख मुग्ध-सा फँसा फन्द, अब प्रकट किया छलियापन को॥
यह कैसा परिहास? बुलाकर घर में नजर चुराते हो।
ज्यों ज्यों आऊँ निकट, साँवरे! पीछे हटते जाते हो॥

इस प्रकार भक्त-भगवन्त-गुण-कीर्तन पूज्य मामाजीके स्वभावमें था। वे चलते-फिरते, आते-जाते जब भी समय मिलता भगवत्सम्बन्धी पद-रचना करने लगते। इसके साथ ही प्राचीन भक्तोंकी महिमाका गुणगान वे अपने पदों एवं नाटकोंमें करते। इनके द्वारा गोस्वामी तुलसीदासजी, चैतन्य महाप्रभु, पीपाजी इत्यादि भक्तोंके चरित पुस्तक-रूपमें लिखे गये। इसके साथ ही मीराबाईका एक सम्पूर्ण पद्यमय चरित भी लिखा गया जो पूर्वमें गीताप्रेसद्वारा प्रकाशित हुआ था। वे भक्तमालकी कथा बड़े चावसे करते थे। इन्होंने श्रीनाभादासजीकृत भक्तमालका प्रकाशन गीताप्रेसद्वारा करानेका प्रयास किया। इनकी प्रेरणाके फलस्वरूप गीताप्रेसद्वारा श्रीप्रियादासकृत रसबोधिनीटीका एवं विस्तृत हिन्दी व्याख्यासहित सम्पूर्ण भक्तमाल प्रकाशित हुआ। इसमें भक्तोंकी अतिशय महिमाका वर्णन है।

पूज्य मामाजीके इष्टदेव थे आनन्दकन्द ब्रह्माण्डनायक मर्यादापुरुषोत्तम 'श्रीसीताराम'। अत: इनकी लीलाओंका चिन्तन मामाजीको प्राय: विशेषरूपसे होता रहता, इसलिये भगवान् श्रीसीतारामजीकी लीलाओंका वर्णन इनके पदोंमें विशेष रूपसे प्राप्त होता है। पूज्य मामाजी अपने इष्टदेवके प्रति शरणागत थे। उनकी ये धारणा थी कि परमात्म-प्रभु जहाँ, जैसे और जिस प्रकार रखेंगे; उसीमें मैं प्रसन्न हूँ। संयोगकी बात है, इनकी जीवन-लीलाका संवरण तब हुआ, जब वे एक कथा-सत्संगसे वापस सड़क-मार्गसे लौट रहे थे, मार्गमें इनकी गाड़ी एक वाहनको बचानेमें एक वृक्षसे टकराकर दुर्घटनाग्रस्त हो गयी। इसीमें पूज्य मामाजीका महाप्रयाण हो गया— उन्हें अपनी उपासनास्थली बक्सरमें लाया गया, जहाँ उनके अन्तिम दर्शनके लिये भक्तोंका सैलाब उमड़ पड़ा। विधिपूर्वक गंगातटपर उनका अन्तिम संस्कार सम्पन्न हुआ तथा श्राद्ध आदिका कार्य पूर्ण शास्त्रविधिसे सम्पन्न कराया गया।

आस्तिक जनोंमें पूज्य मामाजीके सत्संगका बड़ा महत्त्व था, इनकी कथाएँ सुननेके लिये प्राय: लोग प्रतीक्षा करते थे। निकट भविष्यमें पूज्य मामाजी-जैसे सन्तोंकी क्षति-पूर्ति सम्भव नहीं है।

बोध-कथा—

परमात्मा सर्वव्यापक है

गुरु नानकदेवजी यात्रा करते हुए कराची, बिलोचिस्तानके स्थलमार्गसे मक्का पहुँच गये थे। जब रात्रि हुई, तब वे काबाकी परिक्रमामें काबाकी ओर ही पैर करके सो रहे। सबेरे मौलवियोंने उन्हें इस प्रकार सोते देखा तो क्रोधसे लाल होकर डाँटा—'तू कौन है? खुदाके घरकी ओर पैर पसारे पड़ा है, तुझे शरम नहीं आती?'

गुरुने आँखें खोलीं और धीरेसे कहा—'मैं तो थका-हारा मुसाफिर हूँ। जिधर खुदाका घर न हो, उधर मेरे पैर मेहरबानी करके कर दीजिये।'

मौलवी लोगोंको और क्रोध आया। उनमेंसे एकने गुरु नानकका पैर पकड़कर झटकेसे एक ओर खींचा; किंतु उसने देखा कि गुरुके पैर जिधर हटाता है, काबा तो उधर ही दीख पड़ता है। अब तो वे लोग उन महान् संतके चरणोंपर गिर पड़े।

गुरु नानकदेवने उन्हें समझाया—'परमात्मा सर्वव्यापक है। उसका घर किसी एक ही स्थानमें है, यह मानना अज्ञान है।'

गो-चिन्तन—

गोपालनमें सुधारकी अनिवार्यता

(श्रीमुल्कराजजी विरमानी)

बहुत दु:खकी बात है कि हमारी देशी गायोंकी संख्या, जो स्वतन्त्रताके समय एक करोड़ थी, आज घटकर लगभग १५ लाखसे भी कम हो गयी है, जबकि हिन्दुस्तानकी जनसंख्या ३० करोड़से बढ़कर १३० करोड़से भी अधिक हो गयी है। भावनाओंकी बात नहीं करेंगे कि 'गाय जिस घरमें होती है, वह घर अधिक फलता-फूलता है।' लेकिन ये तो निश्चित है कि गायको हमने समझबूझकर माताकी संज्ञा दी है; क्योंकि वह हर प्रकारसे हमपर उपकार करती है। पोषणकी उपयोगिता इसीसे सिद्ध हो जाती है कि गायका दूध तो औषधि है ही, मगर इससे बननेवाले अनेकों पदार्थ भी बहुत उपयोगी हैं। गोबरसे अनेकों वस्तुएँ बनती हैं, गोमूत्र तो प्रामाणिक रूपसे लाभकारी है ही। मगर दु:खका विषय है कि इसका प्रचार समाजमें बहुत ही कम हुआ है। इस परिप्रेक्ष्यमें गायको बचानेके लिये सूझ-बूझके बिना ही प्रयत्न किये गये हैं। जैसे सरकारी स्तरपर गौशालाओंका निर्माण हुआ है, लेकिन उनमें गायोंकी देखभाल नहीं-के बराबर है।

एक गायके पुजारी, एक महात्माके बहुत बड़े मित्र हैं। मैं भी उन महात्माको अच्छी तरहसे जानता हूँ। उनसे एक वार्ताके दौरान मैंने पूछा कि ये महात्मा ६-७ गौशालाओंका नियन्त्रण कर रहे हैं और मैं भी इनकी कुछ गौशालाओंमें गया हूँ। इतनी बड़ी संख्यामें गौशालाओंका रख-रखाव कठिन ही नहीं, अपितु असम्भव भी है। मैंने उन सज्जनसे पूछा कि महात्माजीका वास्तवमें क्या उद्देश्य है? उन्होंने उत्तर दिया 'गाय कसाईके पास नहीं जानी चाहिये, ये एकमात्र लक्ष्य है।' मैंने उनकी गौशालाओंमें जानेपर देखा कि एक भी गाय जुगाली नहीं कर रही, बैठी है और इधर-उधर ध्यान लगाकर देखती है कि कहींसे खानेको और कुछ नहीं तो सूखा भूसा ही मिल जाय।

अब ये कहना तो कठिन है कि गाय भूखी मरे अथवा कसाईके यहाँ मरे तो क्या ठीक है? मेरा मत है कि गाय अगर ठीक ढंगसे पाली जाय तो वह देशकी अर्थव्यवस्थाको सुदृढ़ करनेमें बहुत योगदान दे सकती है। आज हमने अपनी गलत सोचके कारण गायको बोझ समझकर कसाईके स्थानपर उसको भूखा मारना अधिक ठीक समझा है।

हमारी एक हरियाणाकी ग्रामीण बहन हैं—रेनू सांगवान, जिनके साक्षात्कारका वीडियो गो-प्रेमियोंमें बहुत दिखाया गया। ये अकेली सौ गायोंकी एक गोशाला बहुत सुचारु ढंगसे चला रही हैं। लगभग दस व्यक्तियोंको नौकरी देकर उनके परिवारका पालन कर रही हैं और अपने लिये अच्छा आर्थिक लाभ भी ले रही हैं। कोई नासमझ ही उनके विचारोंको नहीं मानेगा। एक साक्षात्कारमें उन्होंने कहा, 'गाय दूध नहीं देती, साँड़ दूध देता है' ये घोषणा ऐसे लगती है कि वे बहुत गलत बोल रही हैं, परंतु उनकी पूरी बात सुनकर हमारे गोपालोंको समझना चाहिये। रेनू बहन कहती हैं कि साँड़ अगर अच्छी नस्लका हो और उसका पोषण ठीक हो तो उसी नस्लकी गायके साथ उसका मिलन (क्रॉस) करवाया जाय तो कोई कारण नहीं कि उक्त गाय १० से १५ लीटर दूध न दे, बल्कि वह स्वयं तो २४-२४ लीटरतक कई गायोंसे दूध प्राप्त करती हैं। कई नस्लोंकी गाय उनके यहाँ १० से १५ लीटर दूध देती हैं। वे अपने वक्तव्यमें कहती हैं ***'बोया पेड़ बबूल का आम कहाँ ते खाय'***। इसका तात्पर्य है कि हम नस्ल बिगाड़कर और गायकी बछिया-बछड़ेको उसके आवश्यकतानुसार दूध न पिलाकर गोवंशके साथ बहुत बड़ा अत्याचार कर रहे हैं। उन्होंने अपने पाले हुए साँड़ोंको वीडियोपर दिखाया कि वे कितने हृष्ट-पुष्ट हैं, कई साँड़ तो हाथीके समान ऊँचे-लम्बे हैं।

उनका कहना है कि एक व्यक्ति अपनी कपिला नस्लकी गाय क्रॉस करवानेके लिये उनके पास आया। रेनूजीने उससे कहा कि मेरे पास तो स्वर्ण कपिलाका साँड़ है, मैं उसको साधारण कपिला गायके साथ मेल कराकर अपने बैलको खराब नहीं करना चाहती। उनके सारे गाय-बैल तो दर्शनीय हैं ही, छोटे बछड़े-बछिया भी हृष्ट-पुष्ट हैं; क्योंकि वे उन्हें माँका पूरा-का-पूरा दूध पिलानेमें कोई संकोच नहीं करतीं।

वे कहती हैं कि किसान अगर मेहनत नहीं करेगा तो कभी नहीं पनप सकता। वह स्वयं ११ बजे सोकर प्रात: ३ बजे उठकर काममें लग जाती हैं। गौ-पालकोंसे मैं विनम्र प्रार्थना करना चाहता हूँ कि वह इस लेखपर विचार करें ताकि गाय समाजपर आजकी स्थितिके अनुसार बोझ न बनकर समृद्धिका प्रतीक बने।

मूर्तिपूजा

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

कोई भी आस्तिक भक्त मूर्तिकी पूजा नहीं करता, वह तो मूर्तिमें अपने इष्टदेवकी पूजा करता है, इसलिये जबतक अपना भास रहे, तबतक अपने इष्टदेवकी पूजा करते रहना चाहिये।

जब मनुष्य किसी पुस्तक या चिट्ठीको पढ़ता है, तब कागज या स्याहीको नहीं पढ़ता; किंतु उसमें लिखे हुए संकेतके द्वारा उसके अर्थको पढ़ता है। कागज, स्याही और अक्षर तो उस अर्थको समझनेके लिये चिह्नमात्र हैं। अर्थ तो पढ़नेवालेकी बुद्धिमें परम्परासे विद्यमान है। इसी प्रकार भक्त मूर्तिको संकेत बनाकर अपने इष्टकी पूजा करता है, मूर्तिकी पूजा नहीं करता।

इसी तरह गीता आदिमें समझ लेना चाहिये। पढ़नेवाला उसे भगवान्‌की वाणी समझकर पढ़ता है और उसी भावसे उसका आदर करता है।

श्रीतुलसीदासजी राम-नामका जप करते थे तो उनके भावमें परमेश्वर और उनके पूर्ण ऐश्वर्य, माधुर्य आदि समस्त गुण नाममें भरे हुए थे, वे राम और ब्रह्म दोनोंसे नामको बढ़कर मानते थे। उनके विषयमें कोई भी यह नहीं कह सकता कि वे परमेश्वरका स्मरण नहीं कर रहे थे, शब्दमात्रका जप कर रहे थे। इससे साधकको यह समझ लेना चाहिये कि कोई भी साधन नीचे दर्जेका नहीं है।

जिस साधकको जो साधन प्रिय हो, अपनी योग्यताके अनुसार जिस साधनको वह सुगमतासे कर सके, जिसमें उसका पूर्ण विश्वास हो, किसी प्रकारका भी सन्देह न रहे, वही साधन उसके लिये सर्वश्रेष्ठ है। किसी प्रकारका सन्देह न रहनेसे साधककी बुद्धि साधनमें लग जाती है। प्रेम होनेसे हृदय द्रवित हो जाता है। विश्वास होनेके कारण मनमें किसी प्रकारका विकल्प नहीं उठता। उसमें मन लग जाता है। अत: साधनमें कोई छोटा-बड़ा नहीं है।

किसी भी साधकको यह नहीं समझना चाहिये कि 'मुझे अमुक प्रकारकी योग्यता प्राप्त नहीं है, इसलिये मुझे भगवान् नहीं मिल सकते।' यह मानना भगवान्‌की महिमाको न जानकर उनकी कृपाका अनादर करना है; क्योंकि भगवान् अपनी कृपासे प्रेरित होकर ही साधकको मिलते हैं। उनकी कृपा प्राप्त करनेका एकमात्र उपाय उनसे मिलनेकी उत्कण्ठा, उनके प्रेमकी अतिशय लालसा ही है। धन, बल, सुन्दरता या किसी प्रकारके साधनके बलसे भगवान् नहीं मिल सकते। साधन उनका या उनके प्रेमका मूल्य नहीं है। साधन तो अपने बनाये हुए दोषोंको मिटानेके लिये है, जो भगवान्‌द्वारा दी हुई योग्यताका सदुपयोग करनेमात्रसे होता है।

मनुष्य चाहे कैसा ही दीन-हीन मलिन क्यों न हो, कितना ही बड़ा पातकी क्यों न हो, वह जैसा और जिस परिस्थितिमें है, उसीमें यदि विश्वासपूर्वक भगवान्‌का हो जाय और उनको पानेके लिये व्याकुल हो उठे, भगवान्‌के वियोगमें उसे किसी प्रकार चैन न पड़े, तो भगवान् अवश्य मिल जाते हैं।

भगवान् उसी पतितको मिलते हैं, जो पतित नहीं रहना चाहता अर्थात् पुन: पाप नहीं करना चाहता। ऐसे साधकको भगवान् परम पवित्र बनाकर अपना लेते हैं, परंतु जिसको अपने पापोंका पश्चात्ताप नहीं है, जो उनको छोड़ना नहीं चाहता, उसे भगवान् नहीं मिलते। वैसे ही जिसको अपने गुणोंका अभिमान होता है, उसे भी नहीं मिलते। साथ ही यह बात भी है कि जबतक साधकके मनमें किसी दूसरी वस्तुकी चाह रहती है, तबतक भगवान् नहीं मिलते। किंतु उसकी चाहके अनुरूप वस्तु और परिस्थिति, यदि उसके पतनमें हेतु न हो तो प्रदान कर देते हैं।

भगवान्‌की यह शर्त है कि मुझसे मिलनेके बाद अन्य किसीसे साधक नहीं मिल सकता, परंतु ऐसा साधक कोई बिरला ही होता है, जो हर समय एकमात्र उन्हींसे मिलनेके लिये इच्छुक रहता हो, जिसके समस्त काम पूरे हो चुके हों, जिसके मनमें अन्य किसी प्रकारके संयोगकी चाह नहीं रही हो।

सुभाषित-त्रिवेणी

परमात्माका स्वरूप
[Form of God]

सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥

वह सब ओर हाथ-पैरवाला, सब ओर नेत्र, सिर और मुखवाला तथा सब ओर कानवाला है; क्योंकि वह संसारमें सबको व्याप्त करके स्थित है।

It has hands and feet on all sides, eyes, head and mouth in all directions, and ears all-round; for it stands pervading all in the universe.

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च॥

वह सम्पूर्ण इन्द्रियोंके विषयोंको जाननेवाला है, परन्तु वास्तवमें सब इन्द्रियोंसे रहित है तथा आसक्ति-रहित होनेपर भी सबका धारण-पोषण करनेवाला और निर्गुण होनेपर भी गुणोंको भोगनेवाला है।

Though perceiving all sense-objects, it is really speaking devoid of all senses. Nay, though unattached, it is the sustainer of all nonetheless; and though attributeless, it is the enjoyer of gunas, the three modes of Prakrti.

बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत्॥

वह चराचर सब भूतोंके बाहर-भीतर परिपूर्ण है और चर-अचर भी वही है। और वह सूक्ष्म होनेसे अविज्ञेय है तथा अति समीपमें और दूरमें भी स्थित वही है।

It exists without and within all beings, and constitutes the animate and inanimate creation as well. And by reason of its subtlety, it is incomprehensible; it is close at hand and stands afar too.

अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्।
भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च॥

वह परमात्मा विभागरहित एक रूपसे आकाशके सदृश परिपूर्ण होनेपर भी चराचर सम्पूर्ण भूतोंमें विभक्त-सा स्थित प्रतीत होता है तथा वह जाननेयोग्य परमात्मा विष्णुरूपसे भूतोंको धारण-पोषण करनेवाला और रुद्ररूपसे संहार करने-वाला तथा ब्रह्मारूपसे सबको उत्पन्न करनेवाला है।

Though integral like space in its undivided aspect, it appears divided as it were in all animate and inanimate beings. And that Godhead, which is the only object worth knowing, is the sustainer of being (as Visnu), the destroyer (as Rudra) and the creator of all (as Brahma).

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्॥

वह परब्रह्म ज्योतियोंका भी ज्योति एवं मायासे अत्यन्त परे कहा जाता है। वह परमात्मा बोधस्वरूप, जाननेके योग्य एवं तत्त्वज्ञानसे प्राप्त करनेयोग्य है और सबके हृदयमें विशेषरूपसे स्थित है।

That supreme Brahma is said to be the light of all lights and entirely beyond Maya. That godhead is knowledge itself, worth knowing, and worth attaining through real wisdom, and is particularly abiding in hearts of all.

इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समासतः।
मद्भक्त एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते॥

इस प्रकार क्षेत्र तथा ज्ञान और जाननेयोग्य परमात्माका स्वरूप संक्षेपसे कहा गया। मेरा भक्त इसको तत्त्वसे जानकर मेरे स्वरूपको प्राप्त होता है।

Thus the truth of the Ksetra and knowledge, as well as of the object worth knowing, God has been briefly discussed; knowing this in reality. My devotee enters into My being.

[श्रीमद्भगवद्गीता १३। १३—१८]

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७९, शक १९४४, सन् २०२२, सूर्य उत्तरायण, ग्रीष्म-ऋतु, ज्येष्ठ-कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें ७। ३८ बजेतक	मंगल	अनुराधा दिनमें १२। २४ बजेतक	१७ मई	**मूल** दिनमें १२। २४ बजेसे।
तृतीया रात्रिमें २। ५३ बजेतक	बुध	ज्येष्ठा ,, १०। ५० बजेतक	१८ ,,	**भद्रा** दिनमें ४। ६ बजेसे रात्रिमें २। ५३ बजेतक, **धनुराशि** दिनमें १०। ५० बजेसे।
चतुर्थी ,, १२। २४ बजेतक	गुरु	मूल ,, ९। १० बजेतक	१९ ,,	**संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें १०। २३ बजे, **मूल** दिनमें ९। १० बजेतक।
पंचमी ,, १०। ० बजेतक	शुक्र	पू०षा० ,, ७। ३१ बजेतक	२० ,,	**मकरराशि** दिनमें १। ७ बजेसे।
षष्ठी ,, ७। ४२ बजेतक	शनि	उ०षा० प्रातः ५। ५५ बजेतक	२१ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ७। ४२ बजेसे, **सायन मिथुनराशिका सूर्य** दिनमें १०। ३० बजे।
सप्तमी सायं ५। ३८ बजेतक	रवि	धनिष्ठा रात्रिमें ३। २० बजेतक	२२ ,,	**भद्रा** प्रातः ६। ४० बजेतक, **कुंभराशि** दिनमें ३। ५६ बजेसे, **पंचकारम्भ** दिनमें ३। ५६ बजे।
अष्टमी दिनमें ३। ५२ बजेतक	सोम	शतभिषा ,, २। ३१ बजेतक	२३ ,,	**श्रीशीतलाष्टमीव्रत।**
नवमी ,, २। २६ बजेतक	मंगल	पू०भा० ,, २। ० बजेतक	२४ ,,	**भद्रा** रात्रिमें १। ५५ बजेसे, **मीनराशि** रात्रिमें ८। ९ बजेसे।
दशमी ,, १। २४ बजेतक	बुध	उ०भा० ,, १। ५८ बजेतक	२५ ,,	**भद्रा** दिनमें १। २४ बजेतक, **रोहिणीका सूर्य** रात्रिमें ७। २९ बजे, **मूल** रात्रिमें १। ५८ बजेसे।
एकादशी ,, १२। ५२ बजेतक	गुरु	रेवती ,, २। २३ बजेतक	२६ ,,	**मेषराशि** रात्रिमें २। २३ बजेसे, **अचला एकादशीव्रत (सबका)।**
द्वादशी ,, १२। ४९ बजेतक	शुक्र	अश्वनी ,, ३। २० बजेतक	२७ ,,	**प्रदोषव्रत, मूल** रात्रिमें ३। २० बजेतक।
त्रयोदशी ,, १। १८ बजेतक	शनि	भरणी रात्रिशेष ४। ४७ बजेतक	२८ ,,	**भद्रा** दिनमें १। १८ बजेसे रात्रिमें १। ४६ बजेतक।
चतुर्थी ,, २। १५ बजेतक	रवि	कृत्तिका अहोरात्र	२९ ,,	**वृषराशि** दिनमें ११। १६ बजेसे, **वटसावित्रीव्रत।**
अमावस्या ,, ३। ३९ बजेतक	सोम	कृत्तिका प्रातः ६। ४० बजेतक	३० ,,	**सोमवती अमावस्या**

सं० २०७९, शक १९४४, सन् २०२२, सूर्य उत्तरायण, ग्रीष्म-ऋतु, ज्येष्ठ-शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा सायं ५। २४ बजेतक	मंगल	रोहिणी दिनमें ८। ५६ बजेतक	३१ मई	**मिथुनराशि** रात्रिमें १०। १२ बजेसे।
द्वितीया रात्रिमें ७। २२ बजेतक	बुध	मृगशिरा ,, ११। २८ बजेतक	१ जून	× × × ×
तृतीया ,, ९। २५ बजेतक	गुरु	आर्द्रा ,, २। ६ बजेतक	२ ,,	**रम्भाव्रत।**
चतुर्थी ,, ११। २० बजेतक	शुक्र	पुनर्वसु सायं ४। ४१ बजेतक	३ ,,	**भद्रा** दिनमें १०। २२ बजेसे रात्रिमें ११। २० बजेतक, **कर्कराशि** दिनमें १०। २ बजेसे, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।**
पंचमी ,, १२। ५८ बजेतक	शनि	पुष्य रात्रिमें ,, ७। ० बजेतक	४ ,,	**मूल** रात्रिमें ७। ० बजेसे।
षष्ठी ,, २। १४ बजेतक	रवि	आश्लेषा ,, ९। १ बजेतक	५ ,,	**सिंहराशि** रात्रिमें ९। १ बजेसे।
सप्तमी ,, ३। ३ बजेतक	सोम	मघा ,, १०। ३३ बजेतक	६ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ३। ३ बजेसे, **मूल** रात्रिमें १०। ३३ बजेतक।
अष्टमी ,, ३। २१ बजेतक	मंगल	पू०फा ,, ११। ३८ बजेतक	७ ,,	**भद्रा** दिनमें ३। १२ बजेतक।
नवमी ,, ३। ७ बजेतक	बुध	उ०फा० ,, १२। १२ बजेतक	८ ,,	**कन्याराशि** प्रातः ५। ४७ बजेसे, **मृगशिरा**का सूर्य रात्रिमें ६। ४८ बजेसे।
दशमी ,, २। २५ बजेतक	गुरु	हस्त ,, १२। १६ बजेतक	९ ,,	**श्रीगंगादशहरा।**
एकादशी ,, १। १६ बजेतक	शुक्र	चित्रा ,, १५। १३ बजेतक	१० ,,	**भद्रा** दिनमें १। ५१ बजेसे रात्रिमें १। १६ बजेतक, **तुलाराशि** दिनमें १२। ४ बजेसे, **निर्जला (भीमसेनी) एकादशीव्रत (सबका)।**
द्वादशी ,, ११। ४२ बजेतक	शनि	स्वाती ,, ११। ८ बजेतक	११ ,,	× × × ×
त्रयोदशी ,, ९। ४८ बजेतक	रवि	विशाखा ,, १०। ०१ बजेतक	१२ ,,	**वृश्चिकराशि** सायं ४। १७ बजेसे, **प्रदोषव्रत।**
चतुर्दशी ,, ७। ३९ बजेतक	सोम	अनुराधा ,, ८। ३९ बजेतक	१३ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ७। ३९ बजेसे, **व्रत-पूर्णिमा, मूल** रात्रिमें ८। ३९ बजेसे।
पूर्णिमा सायं ५। १९ बजेतक	मंगल	ज्येष्ठा ,, ७। ६ बजेतक	१४ ,,	**भद्रा** प्रातः ६। २८ बजेतक, **धनुराशि** रात्रिमें ७। ६ बजेसे, **पूर्णिमा।**

कृपानुभूति

श्रीदुर्गासप्तशतीके अनुष्ठानसे माँके दिव्य दर्शन

यह घटना सन् १९७० ई० के नवरात्रकी है, जब मैं श्रम-मंत्रालय (भारत-सरकार)-द्वारा संचालित अभ्रक खान श्रमहितकारी कोष भीलवाड़ामें उपवैद्यके पदपर नियुक्त हुआ था। घरवालोंसे दूर रहकर प्रथम बार पृथक् नवरात्र-पूजन करनेका कार्यक्रम बनाया। इससे पूर्व पूजन की पारिवारिक परम्परानुसार छोटे-बड़े हम सभी लोग श्रद्धापूर्वक सम्मिलित रूपसे दुर्गा माँकी जोत लेते और एक बार भोजन करते रहे थे।

मैं दुर्गापाठमें अभी पूर्ण पारंगत नहीं हुआ था, अतः दुर्गा-उपासक पिताजीने निर्देश दिया कि अपने शासकीय कार्यकालके अतिरिक्त सुबह या अपराह्णमें चण्डीपाठ (साधारण) एवं आपदुद्धारक बटुकपाठ-सहित यथाशक्ति '**ॐ ह्रीं नमः**' मंत्रका जप करना है। हो सके तो अष्टमीकी रात्रिको इसी मंत्रकी एक मालाका हवन करना है।

मैं अपने कार्यस्थल भादू ग्राममें एक वैश्यबन्धुके मकानमें अकेला रहता था। कार्यक्रमानुसार प्रातः शौच-स्नानादि कार्योंसे निवृत्त होकर पाटेपर स्थापित माँके चित्र एवं कलशकी पूजा करके बोये जँवारोंको सींचता और जोत देखता था। अपना पूजाकार्य समाप्तकर तथा चाय-दूध-फलाहार लेकर कार्यस्थलपर पहुँच जाता था। अपराह्ण घर आनेपर पुनः स्नानकर पाठ एवं जप पूर्ण कर लेता था। सायंकाल भोजनके पश्चात् पुनः यथाशक्ति '**ॐ ह्रीं नमः**' का जपकर सो जाता था। आठ दिनतक यह कार्य अनवरत सुगमतापूर्वक चला। अष्टमीकी रात्रिको कुछ हवन-सामग्री एवं घी लेकर आहुति देनेकी तैयारी की।

हवनमें बैठनेसे पूर्व जीनेका दरवाजा एवं कमरेका दरवाजा दोनों बन्द कर लिये और धुआँ निकलनेके लिये खिड़कियाँ खोलकर तन्मयतापूर्वक हवनके लिये प्रस्तुत हुआ। यह रात्रि ११-१२ बजेकी घटना है। जिस समय मैं आहुति दे रहा था, तभी नीचे एवं ऊपरके दोनों द्वारोंके किवाड़ अपने-आप खुल गये और पाटेके ऊपर एक षोडशी कन्या बैठी हुई दीख पड़ी, जो मन्द-मन्द मुसकुरा रही थी। उसके शरीरपर लाल वस्त्र चमक रहे थे, और वह मुझे देख रही थी। मैं भी अपलक होकर उसे देखता रहा, मन्त्र आहुति रुक गयी। कुछ क्षणोंके बाद वह अदृश्य हो गयी, मैं डर-सा गया था। शरीर पसीनेसे तर-बतर हो गया। जैसे-तैसे आहुतिकार्य सम्पूर्णकर जब मैंने पीछे देखा तो कमरेके और जीनेके दरवाजे पूरी तरहसे खुले हुए थे। परिवारके सब लोग सोये हुए थे। किसीको इस घटनाका ज्ञान नहीं हुआ—मैं इस बातसे अत्यन्त विस्मित होकर विश्राम करने लगा। दो दिन बाद दशहरेकी छुट्टी थी, उसमें मैं घर चला आया। मैंने पिताजीको सम्पूर्ण घटनासे अवगत कराया तो वे हँसने लगे और बोले—'धन्य है! बेटा! तूने तो पहली बारमें ही दर्शन कर लिया। माँ अपने छोटे और अज्ञानी बेटेपर अधिक ध्यान देती हैं। तू परीक्षामें तो उत्तीर्ण हो गया।'

जीवनके द्वितीय पड़ावका वह अलौकिक दृश्य, भगवतीके श्रीविग्रहका प्रकाश एवं उनकी सुन्दरताकी छटाका स्मरणकर मैं आज भी रोमांचित एवं मुग्ध हो जाता हूँ।

'बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति'

—सुरेशचन्द मिश्र

सर्वमङ्गलमङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके । शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते॥

हे नारायणि! तुम सब प्रकारका मंगल प्रदान करनेवाली मंगलमयी हो। कल्यादायिनी शिवा हो। सब पुरुषार्थोंको सिद्ध करनेवाली, शरणागतवत्सला, तीन नेत्रोंवाली एवं गौरी हो। तुम्हें नमस्कार है। [**दुर्गासप्तशती ११। १०**]

पढ़ो, समझो और करो

(१)

सत्साहित्यके पठनसे जीवन-निर्माण

मैं कक्षा ६-७ में था, थोड़ा-सा पैसा कहीं मिलता तो पैदल चलकर रेलवे-स्टेशनसे गीताप्रेसकी सस्ती पुस्तकें खरीद लाता और पूरा पढ़ डालता, इसी क्रममें मैंने 'भाईजी' लिखित 'तुलसीदल', गोयन्दकाजीकी 'तत्त्व-चिन्तामणि', पढ़ी तथा तभीसे कल्याणका नियमित ग्राहक बन गया। मुझे लेख पढ़ने एवं पुस्तकोंके संग्रहकी लत-सी पड़ गयी, परिणाम यह हुआ कि सामान्य कार्य करते हुए निरन्तर भगवन्नाम विशेषकर '**हरे राम**''''**हरे हरे**' का स्मरणात्मक उपांशु जप श्वास-प्रश्वासद्वारा होने लगा। शास्त्रानुशीलनका प्रत्यक्ष परिणाम यह रहा कि इसे प्रमाण मानकर कार्य-अकार्य (उचित-अनुचित)-का निर्णय एवं कर्तव्यानुपालनमें मेरा दृढ़ निश्चय बना रहा।

नामस्मरण तथा शास्त्रानुशीलनके अद्भुत प्रभावके बहुतसे अवसर मेरे जीवनमें आये, प्रत्येक घटनाके बाद विश्वास बढ़ता गया। यहाँ अबतक कभी, किसीके लिये प्रकट न की गयी, कतिपय घटनाओंका स्मरण 'कल्याण' के पाठकोंके हितार्थ विज्ञापित किया जा रहा है—

१-घटना १९८२ ई० की है, मैंने हाईस्कूलकी परीक्षा दी, मेरी गणना गाँव एवं स्कूलके अच्छे छात्रोंमें की जाती थी, परंतु समाचार-पत्रोंमें रिजल्ट आया, तो मैं उत्तीर्ण नहीं था, फिर क्या था; घर-समाज सर्वत्र उलाहनोंकी बौछार होने लगी, मैंने सब कुछ सहन किया और बढ़ा दिया '**हरे राम**''''**हरे हरे**' का स्मरण। उस समय अंकतालिका बहुत विलम्बसे आती थी, एक दिन पिताजी शहरसे सायकिलद्वारा सीधे वहाँ पहुँचे, जहाँ मैं गाँवके बुजुर्गोंके मध्य घोर दुपहरीमें भैंस चरा रहा था। पहुँचते ही उन्होंने सबके पैर छूनेको कहा, मैंने बिना कुछ समझे और प्रतिवादके आदेशका अनुपालन किया। तब उन्होंने बताया कि 'पूरे विद्यालयमें तुम्हारेसहित दो लोग ही प्रथम श्रेणीमें पास हुए हैं, मैंने ईश्वरको धन्यवाद दिया, बादमें यह क्रम एम०एस-सी०, पी-एच०डी० तक बना रहा।'

२-एक बार कम्पनीके कार्यसे जलगाँवसे कलकत्ता तेजपुर होते हुए एक टी गार्डेनका निरीक्षण करने उत्तरी आसाम जाना था, साथमें एक आई०आई०टी०से एम०टेक० किये इंजीनियर तथा एक सहायक था। कलकत्तासे तेजपुर जाते समय रात्रिमें १२ बजे मेरी डीलक्स बस फरक्का पहुँची थी; मैं खिड़कीके किनारे विद्युत् परियोजना क्षेत्र देख रहा था, कि अन्त:प्रेरणासे मैंने रामरक्षास्तोत्रका स्मरण किया और अन्तिम श्लोक '**राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे। सहस्रनाम तत्तुल्यं राम नाम वरानने॥**' आते ही श्रद्धासे नेत्र उन्मीलित करके सिर झुकाया ही था, तभी दायीं तरफके चक्के एक गहरे गड्ढेमें गये तथा गाड़ीकी तीव्र गति होनेके कारण निकल भी गये, परंतु गाड़ीमें तीव्र झटका लगनेसे दो इंचका खिड़की उठानेवाला मोटा राड पूरे वेगसे मेरी दायीं आँखमें पूरा घुस गया। असह्य पीड़ाके साथ पूरा गाल-गला आदि अश्रुओंसे भीग गया, भयाक्रान्त हुआ कि पूरे जन्म अन्धा रहना पड़ेगा, बगलके इंजीनियर और सहायकको बतानेकी हिम्मत नहीं हुई, थोड़ी देर बाद काँपते हाथोंसे आँखको टटोला तो दर्दके बीच सब ठीक मिला।

३-ए०आर०एस० तथा तीन बार असिस्टैण्ट प्रोफेसर पदपर चयनके बाद भी ज्वाइन न कर सका। मेरठमें साधारण नौकरी शुरू की। पत्नी गर्भवती थी, दो परीक्षणोंमें सब कुछ सामान्य होते हुए भी अन्तिम परीक्षणमें डाक्टरोंने पत्नीके बच्चेदानीकी पानीकी थैलीके सूखने/फटनेकी बात तथा जच्चा-बच्चाके जानका खतरा बताकर घबड़वा दिया, अपने गुरुके सुझावसे सन्तानगोपाल मन्त्र तथा नारायण-कवचका पाठ करने लगा, समयपर पूर्ण स्वस्थ बच्चा घरपर बिना ऑपरेशन पैदा हुआ।

४-नौकरीमें एक बार सलेमपुरमें ट्रान्सफार्मर जल जानेके कारण गर्मीसे राहतके लिये 'गण्डकी-तट' पर जा रहा था, जैसे ही स्कूटर स्टेशनके सामने हनुमान्जीकी एक मूर्तिके सामनेसे गुजरा, संस्कारवश ढाई-तीन वर्षका एक बच्चा बोला—'जै बजरंग बली', स्कूटरसे चलते हुए

मैंने भी शब्द दुहराये, तबतक १०-१५ लोग चिल्लाये, मेरे कुछ समझते-समझते २५-३० सेमी मोटी एक शीशमकी टहनी हम लोगोंके ऊपर गिरी। हुआ यह कि बिजली विभागके लोग डालियाँ काट रहे थे, इसे बजरंगबलीका चमत्कार कहें या संयोग। पत्तियों तथा सहायक टहनियोंका हिस्सा नीचे गिरा, और मोटा तना मेरे पीछे पत्नीके आगे बीचमें बैठे बच्चेकी पीठपर रगड़कर स्कूटरकी सीटपर टिक गया, बच्चा बेहोश हो गया, राजकीय चिकित्सालय ले गया, सम्पूर्ण परीक्षण हुआ, बच्चा पूर्णत: स्वस्थ था।

५-सन् २००५ ई० की बात है, निवास-अधिकारी हॉस्टेल से दूर नये प्लॉटपर मैं पड़ोससे तार खींचकर सब्जियोंकी सिंचाई कर रहा था, प्लॉटमें पानी भरा था, एकाएक डिलीवरी पाइप निकल जानेके कारण एक हाथमें पाइप, दूसरे हाथसे टुल्लूको ज्यों ही मैंने पकड़ा, एक नंगे तारसे सम्पर्कमें आनेके कारण उसमें प्रवाहित विद्युत्से मैं टुल्लूसे चिपककर निश्चेष्ट हो गया, आवाज भी जाती रही, बचनेका कोई प्रयास सफल नहीं हो पा रहा था, अकेलेमें तथा '**अकालमृत्युहरणं सर्वव्याधिविनाशनम्। विष्णुपादोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते॥**' का भाव मनमें आया। मन चीत्कारा कि क्या मुझ नियमित विष्णु-पादोदकका सेवन करनेवालेकी अकालमृत्यु सम्भव है? न जाने कहाँसे शक्ति आयी, पूरे जोरसे मोटरसे चिपके हाथको खींचने लगा, तभी मोटरके बार-बार हिलनेसे नंगा तार क्षणभरके लिये अलग हुआ, मैं छिटककर दूर गिरा, भगवान्‌को धन्यवाद दिया और यह रहस्य गोपनीय रखा, जो आज प्रथम बार प्रकट हो रहा है। अन्य घटनाओंको विस्तार-भयसे देना समीचीन नहीं प्रतीत होता है। कहना केवल इतना ही है कि सत्साहित्यसे अच्छे संस्कारोंका निर्माण होता है और इससे जीवनकी राह आसान हो जाती है।

—**दिनेशचन्द्र उपाध्याय**

(२)

परायी वस्तुका लोभ न करो

सौराष्ट्रमें लोया गाँवके कोली जातिके एक भक्त महाप्रभु श्रीस्वामिनारायणके शिष्य थे। उनका नाम था घेला। निम्न समझे जानेवाले कुलमें उत्पन्न होनेपर भी वे मानवताके उच्च प्रतीक थे। संवत् १८६९ की बात है, गुजरातमें महान् दुष्काल पड़ा। अन्नके अभावसे बहुत-से लोग मर गये। शेष लोग किसी प्रकार जीवन बचानेके लिये दूसरे प्रान्तोंमें मजदूरी करने निकल पड़े। घेला भक्त भी सौराष्ट्रसे सूरतकी ओर चले। जाते-जाते मार्गमें उनको एक सोनेका हार दीख पड़ा। उनकी स्त्री पीछे-पीछे आ रही थी। घेला भक्तके मनमें तो उस हारको लेनेका संकल्प भी न हुआ, पर उनके मनमें यह विचार उठा कि पीछे पत्नी आ रही है, वह कदाचित् दुष्कालरूपी आपत्काल और स्त्री-स्वभावके वश उसे लेनेका संकल्प करे, तो यह ठीक न होगा। यह सोचकर उस भक्तने चलते-चलते सुवर्णके हारको पैरसे धूल इकट्ठी करके ढक दिया। उनकी पत्नी दूरसे ही यह तमाशा देख रही थी। पास जाकर पतिसे उस विषयमें पूछ-ताछ करनेपर उसके पतिने कहा—'तेरे मनमें परद्रव्य लेनेका संकल्प न हो, इसलिये मैंने इस स्वर्णके हारको मिट्टीसे ढक दिया।'

यह सुनकर पत्नीने कहा—'स्वामी! परधन तो विष्ठाके समान माना गया है; आपने उसको अपने पैरसे स्पर्श किया है, इसलिये अपना पैर धोकर शुद्ध करें।' आगे जाकर एक वृक्षके नीचे दोनों विश्राम करनेके लिये बैठे। इतनेमें एक घोड़ेपर सवार होकर कोई भलेमानस वहाँ आ पहुँचे और उनसे पूछा कि, 'क्या तुमलोगोंने रास्तेमें कोई सोनेका हार देखा है?' घेला भक्तने कहा—'हाँ, मैंने उसे धूलसे ढक दिया है।' उस भलेमानसके आग्रह करनेपर भक्तने जाकर उस स्थानको दिखला दिया। अपनी खोयी वस्तु पाकर वे भलेमानस बहुत प्रसन्न हुए और साथ ही भक्तकी ईमानदारीपर चकित हो उठे। उन्होंने पूछा कि, 'तुम कौन हो, कहाँ जा रहे हो?' जब भक्तने अपनी कथा कह सुनायी, तब उन्होंने फिर पूछा—'ऐसे संकटमें पड़कर भी रास्तेमें पड़े हुए सोनेके हारको तुमने क्यों नहीं उठाया?' भक्तने उत्तर दिया कि 'हमारे गुरु श्रीस्वामिनारायण महाप्रभुकी यह आज्ञा है कि परायी वस्तुपर कभी जी न ललचाओ। चाहे कैसा ही संकट क्यों न हो, परायी वस्तुको स्पर्श न करो।'

धन्य है गरीब भक्तकी ईमानदारी और निर्लोभ

वृत्तिको। समाजमें इस प्रकारकी ईमानदारी और परायी वस्तुके प्रति लोभहीनताकी प्रवृत्तिमें वृद्धि हो तो कहीं दु:ख देखनेको भी न मिले। —**शास्त्री हरिबलदास**

(३)

क्रोध महान् शत्रु है

स्वामी तोतापुरीजी और श्रीरामकृष्ण परमहंस एक बार वेदान्तकी चर्चा कर रहे थे।

तभी चिलमके लिये धूनीमें-से आग लेने बगीचेका एक नौकर आया।

तोतापुरी उसपर बिगड़कर चिमटेका प्रहार करने ही जा रहे थे कि रामकृष्ण परमहंस हँस पड़े—छि: ! छि: ! कैसी शर्मकी बात है यह !

तोतापुरी चौंके तो परमहंसदेव बोले, 'मैं आपके ब्रह्मज्ञानकी गम्भीरता देख रहा था। आप अभी कह रहे थे कि ब्रह्म ही सत्य है और सारा जगत् उसीका रूप है, पर क्षणभरमें आप सब भूल गये और उस आदमीको मारने दौड़ पड़े।'

तोतापुरीजीने अपनी गलती महसूस की और बोले—'सचमुच मैं तमोगुणके वशीभूत हो गया था। क्रोध वस्तुत: महान् शत्रु है। अब उसे कभी अपने पास न फटकने दूँगा।' —**कृष्णदत्त भट्ट**

(४)

ईमानदारीका उदाहरण

आजके घोर कलियुगमें भी ईमानदारीकी मिसाल पेश करती हूँ। हमारे घरके पंडितजी श्रीप्रभुदयालजी (बिसरावाले)-को मुझे चार हजार रुपये देने थे। मैंने अपने पासकी रुपयेकी दो गड्डी, एक दस हजारकी, एक पाँच हजारकी, में एक गड्डीमें से जो कि दस हजारकी थी, एक हजार रुपये निकालकर चार हजारके भरोसे नौ हजार रुपये पंडितजीको दे दिये। घर जाकर जब पंडितानीजी सुशीला भाभीजीने देखा तो तुरंत पंडितजीको हमारे घर रुपये वापस देने भेजा और कहलाया कि 'मानसिक संतुलन बनाये रखें, जिम्मेदारियाँ बढ़ गयी हैं, शान्त, स्थिर चित्तसे घर सम्हालें।' ऐसा उन्होंने इसलिये कहा; क्योंकि मेरे पतिका गोलोकवास हुए थोड़े ही दिन हुए थे। जबकि पंडितजीका घर बन रहा था एवं उन्हें रकमकी आवश्यकता थी। धन्य हैं पंडितजी-पंडितानीजी एवं उनकी ईमानदारी। ऐसे लोगोंके सुकर्मोंपर ही धरती टिकी है। —**शारदा सिंघानिया**

(५)

निर्भीक पत्रकारका धर्म

बीसवीं शताब्दीके पत्रकारोंमें बाबू रामानन्द चटर्जीका बड़ा नाम था। अहिन्दीभाषी होते हुए भी उन्होंने कोलकातासे १९२६ में हिन्दीके दैनिक अखबार 'विशाल भारत' का प्रकाशन आरम्भ किया था। स्वतन्त्रता और निष्पक्षताके लिये यह अखबार बहुत प्रसिद्ध हुआ। महात्मा गाँधीका चटर्जी साहबसे आत्मीय सम्बन्ध था। एक बार कोलकातामें कांग्रेस अधिवेशनके दौरान महात्मा गाँधीने उन्हें दूरसे ही देख लिया। किसी व्यक्तिको उनके पास भेजा कि उन्हें मंचपर ले आओ। चटर्जी बाबूने उत्तर दिया, 'मैं अपने साथियोंके साथ पत्रकारोंकी गैलरीमें बैठनेमें ही अपना गौरव मानता हूँ।' अंग्रेजी सरकारकी कोपदृष्टिके कारण 'विशाल भारत' में लगातार घाटा होता रहा, परंतु वह अखबार बन्द नहीं हुआ। विश्वगुरु रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी कहानियाँ और कविताएँ प्रत्येक अंकमें छपती थीं।

बाबू रामानन्द चटर्जी एक बार काशी-भ्रमणपर आये थे, यहाँ गंगाजीमें स्नान कर रहे थे। तभी पैर फिसल गया और गोता खाने लगे। एक युवकने गंगामें कूदकर उन्हें बचा लिया। बाबूजीने कृतज्ञता प्रकट की। उसे अपना नाम और पता दे दिया और कहा कि अगर कभी कोलकाता आना हुआ तो मुझसे जरूर मिलना और मेरे लायक सेवा हो तो वह भी जरूर बताना। इस घटनाके एक वर्ष पश्चात् वह युवक कोलकाता पहुँचा और तलाश करके चटर्जी साहबसे मिला। अनौपचारिक वार्तालापके बाद उसने अपनी एक स्वरचित कविता उन्हें दी और कहा, 'कृपा करके इस कविताको आप विशाल भारतके रविवारके अंकमें छाप दीजियेगा।' चटर्जी बाबूने कविता पढ़ी और कहा, 'भाई! इस कविताको तो मैं नहीं छाप सकता, अगर तुम चाहो तो मुझे ले चलकर हुगली नदीमें डुबो सकते हो।'

—**उमेश प्रसाद सिंह**

मनन करने योग्य

तृष्णा ही दु:खका कारण

चन्द्रवंशमें नहुष नामके एक चक्रवर्ती सम्राट् थे। उनके यति, ययाति, संयाति, आयाति, वियाति और कृति-नामक छ: महाबलविक्रमशाली पुत्र हुए। यतिने राज्यकी इच्छा नहीं की, इसलिये ययाति ही राजा हुआ। ययातिने शुक्राचार्यजीकी पुत्री देवयानी और वृषपर्वाकी कन्या शर्मिष्ठासे विवाह किया था। देवयानीने यदु और तुर्वसुको जन्म दिया तथा वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठाने द्रुह्यु, अनु और पूरुको उत्पन्न किया।

ययातिको शुक्राचार्यजीके शापसे युवावस्थामें ही बुढ़ापेने घेर लिया था। पीछे शुक्रजीके प्रसन्न होकर आज्ञा देनेपर उन्होंने अपनी वृद्धावस्थाको ग्रहण करनेके लिये बड़े पुत्र यदुसे कहा—'वत्स! तुम्हारे नानाजीके शापसे मुझे असमयमें ही वृद्धावस्थाने घेर लिया है, अब उन्हींकी कृपासे मैं उसे तुमको देना चाहता हूँ। मैं अभी विषय-भोगोंसे तृप्त नहीं हुआ हूँ, इसलिये एक सहस्र वर्षतक मैं तुम्हारी युवावस्थासे उन्हें भोगना चाहता हूँ। इस विषयमें तुम्हें किसी प्रकारकी आनाकानी नहीं करनी चाहिये।' किंतु पिताके ऐसा कहनेपर भी यदुने वृद्धावस्थाको ग्रहण करना न चाहा। तब पिताने उसे शाप दिया कि तेरी सन्तान राजपदके योग्य न होगी।

फिर राजा ययातिने तुर्वसु, द्रुह्यु और अनुसे भी अपना यौवन देकर वृद्धावस्था ग्रहण करनेके लिये कहा, तथा उनमेंसे प्रत्येकके अस्वीकार करनेपर उन्होंने उन सभीको शाप दे दिया। अन्तमें सबसे छोटे शर्मिष्ठाके पुत्र पूरुसे भी वही बात कही तो उसने अति नम्रता और आदरके साथ पिताको प्रणाम करके उदारतापूर्वक कहा—'यह तो हमारे ऊपर आपका महान् अनुग्रह है।' ऐसा कहकर पूरुने अपने पिताकी वृद्धावस्था ग्रहणकर उन्हें अपनी युवावस्था दे दी।

राजा ययातिने पूरुकी युवावस्था लेकर समयानुसार प्राप्त हुए यथेच्छ विषयोंको अपने उत्साहके अनुसार धर्मपूर्वक भोगा और अपनी प्रजाका भली प्रकार पालन किया। फिर शर्मिष्ठा और देवयानीके साथ विविध भोगोंको भोगते हुए 'मैं कामनाओंका अन्त कर दूँगा'— ऐसा सोचते-सोचते वे क्षुब्धचित्त हो गये तथा उन्होंने इस प्रकार अपना उद्‌गार प्रकट किया—

'भोगोंकी तृष्णा उनके भोगनेसे कभी शान्त नहीं होती, बल्कि घृताहुतिसे अग्निके समान वह बढ़ती ही जाती है। सम्पूर्ण पृथ्वीमें जितने भी धान्य, यव, सुवर्ण, पशु और स्त्रियाँ हैं, वे सब एक मनुष्यके लिये भी पर्याप्त नहीं हैं, इसलिये तृष्णाको सर्वथा त्याग देना चाहिये। जिस समय कोई पुरुष किसी भी प्राणीके लिये पापमयी भावना नहीं करता, उस समय उस समदर्शीके लिये सभी दिशाएँ सुखमयी हो जाती हैं। दुर्मतियोंके लिये जो अत्यन्त दुस्त्यज है तथा वृद्धावस्थामें भी जो शिथिल नहीं होती, बुद्धिमान् पुरुष उस तृष्णाको त्यागकर सुखसे परिपूर्ण हो जाता है। अवस्थाके जीर्ण होनेपर केश और दाँत तो जीर्ण हो जाते हैं, किंतु जीवन और धनकी आशाएँ उसकी जीर्ण होनेपर भी जीर्ण नहीं होतीं।* विषयोंमें आसक्त रहते हुए मुझे एक सहस्र वर्ष बीत गये, फिर भी नित्य ही उनमें मेरी कामना होती है। अत: अब मैं इसे छोड़कर अपने चित्तको भगवान्‌में ही स्थिरकर निर्द्वन्द्व और निर्मम होकर वनमें विचरूँगा।'

तदनन्तर राजा ययातिने पूरुसे अपनी वृद्धावस्था वापस लेकर उसकी युवावस्था लौटा दी। फिर उन्होंने दक्षिण-पूर्व दिशामें तुर्वसुको, पश्चिममें द्रुह्युको, दक्षिणमें यदुको और उत्तरमें अनुको (पूरुके अधीनस्थ) माण्डलिकपदपर नियुक्त किया तथा पूरुको सम्पूर्ण भूमण्डलके राज्यपर अभिषिक्तकर स्वयं वनको चले गये।

---

* न जातु काम: कामानामुपभोगेन शाम्यति। हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते॥
यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशव: स्त्रिय:। एकस्यापि न पर्याप्तं तस्मात्तृष्णां परित्यजेत्॥
यदा न कुरुते भावं सर्वभूतेषु पापकम्। समदृष्टेस्तदा पुंस: सर्वा: सुखमया दिश:॥
या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्या न जीर्यति जीर्यत:। तां तृष्णां सन्त्यजेत्प्राज्ञ: सुखेनैवाभिपूर्यते॥
जीर्यन्ति जीर्यत: केशा दन्ता जीर्यन्ति जीर्यत:। धनाशा जीविताशा च जीर्यतोऽपि न जीर्यत:॥ (वि०पु० ४। १०। २३—२७)

नवीन विशिष्ट प्रकाशन—शीघ्र प्रकाश्य

चित्रमय श्रीरामचरितमानस (कोड 2295) [ग्रंथाकार, सटीक चार रंगोंमें आर्ट पेपरपर] जिज्ञासु पाठकोंकी विशेष माँगपर 300 आकर्षक रंगीन चित्रोंके साथ पहली बार प्रकाशित हो रहा है। मूल्य ₹ 1600

अहल्यापर कृपा

छं०—परसत पद पावन सोक नसावन प्रगट भई तपपुंज सही।
देखत रघुनायक जन सुखदायक सनमुख होइ कर जोरि रही॥
अति प्रेम अधीरा पुलक सरीरा मुख नहिं आवइ बचन कही।
अतिसय बड़भागी चरनन्हि लागी जुगल नयन जलधार बही॥

श्रीरामजीके पवित्र और शोकको नाश करनेवाले चरणोंका स्पर्श पाते ही सचमुच वह तपोमूर्ति अहल्या प्रकट हो गयी। भक्तोंको सुख देनेवाले श्रीरघुनाथजीको देखकर वह हाथ जोड़कर सामने खड़ी रह गयी। अत्यन्त प्रेमके कारण वह अधीर हो गयी। उसका शरीर पुलकित हो उठा; मुखसे वचन कहनेमें नहीं आते थे। वह अत्यन्त बड़भागिनी अहल्या प्रभुके चरणोंसे लिपट गयी और उसके दोनों नेत्रोंसे जल (प्रेम और आनन्दके आँसुओं) की धारा बहने लगी॥ १॥

धीरजु मन कीन्हा प्रभु कहुँ चीन्हा रघुपति कृपाँ भगति पाई।
अति निर्मल बानी अस्तुति ठानी ग्यानगम्य जय रघुराई॥
मैं नारि अपावन प्रभु जग पावन रावन रिपु जन सुखदाई।
राजीव बिलोचन भव भय मोचन पाहि पाहि सरनहिं आई॥

फिर उसने मनमें धीरज धरकर प्रभुको पहचाना और श्रीरघुनाथजीकी कृपासे भक्ति प्राप्त की। तब अत्यन्त निर्मल वाणीसे उसने [इस प्रकार] स्तुति प्रारम्भ की—हे ज्ञानसे जानने

प्र० ति० 21-03-2022
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० 2308/57 पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2020-2022
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT LICENCE No. WPP/GR-03/2020-2022

श्रीमद्भगवद्गीता—सचित्र, श्लोकार्थसहित

[हिन्दी, गुजराती, मराठी तथा अंग्रेजीमें उपलब्ध]
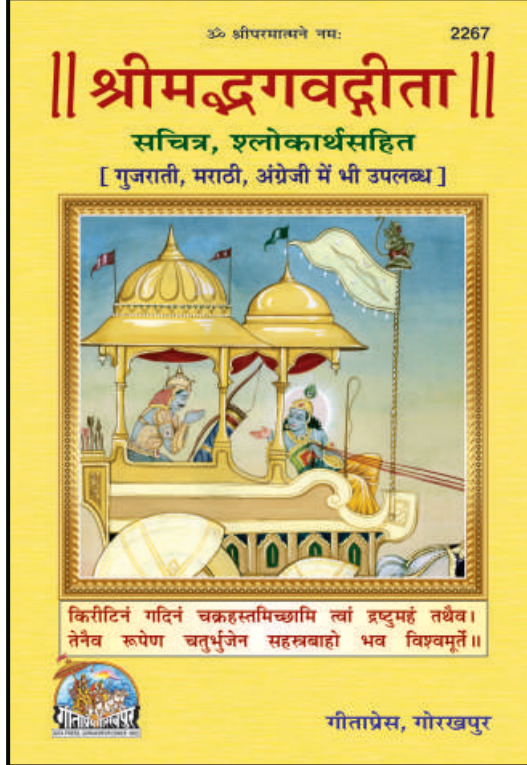
विश्व-साहित्यमें श्रीमद्भगवद्गीताका अद्वितीय स्थान है। मनुष्यमात्रको कर्तव्य और मुक्तिकी शिक्षा प्रदान करनेवाला यह एक अलौकिक एवं प्रासादिक ग्रन्थ है। इसमें स्वयं भगवान्ने अर्जुनको निमित्त बनाकर मनुष्यमात्रके कल्याणके लिये उपदेश दिया है। इस छोटे-से ग्रन्थमें भगवान्ने अपने हृदयके बहुत ही विलक्षण भाव भर दिये हैं, जिनका आजतक कोई पार नहीं पा सका और न पा ही सकता है।

प्रस्तुत ग्रन्थमें श्रीगीताके मूल श्लोकोंके साथ सरल भाषामें उसका अर्थ और अन्तमें आरती दी गयी है। साथ ही प्रसङ्गानुकूल यथास्थान बहुत ही मनोरम 129 आकर्षक चित्रोंको भी दिया गया है।

आशा है, इसके स्वाध्यायसे सामान्य-से-सामान्य व्यक्ति भी गीताके भावोंको आसानीसे हृदयंगम कर अपने जीवनको धन्य कर सकता है।

(कोड 2267) हिन्दी मू०₹250	(कोड 2269) गुजराती मू०₹250
(कोड 2271) मराठी मू०₹250	(कोड 2283) अंग्रेजी मू०₹250

अप्रैल 2021 से मार्च 2022 तक प्रकाशित नवीन प्रकाशन

कोड	पुस्तक-नाम	मू०₹
2267	श्रीमद्भगवद्गीता सचित्र श्लोकार्थसहित	250
2270	अयोध्या-दर्शन	25
	गुजराती	
2269	श्रीमद्भगवद्गीता सचित्र श्लोकार्थसहित	250
2276	कूर्मपुराण	170
2290	मत्स्यमहापुराण	380
2284	सुन्दरकाण्ड मूल बृहदाकार टाइप	60

कोड	पुस्तक-नाम	मू०₹
2285	श्रीज्ञानेश्वरी सटीक	150
2286	सचित्र सुन्दरकाण्ड मूल बेड़िआ रंगीन	30
	बँगला	
2275	ब्रह्मचर्य विज्ञान	60
2274	श्रीचैतन्यभागवत	200
2288	श्रीश्रीगीता एवं रामायण	15
2289	भागवत नवनीत	200
2291	जीवनका सत्य	10

कोड	पुस्तक-नाम	मू०₹
2292	अच्छे बनो	10
2293	सत्संगका प्रसाद	10
	असमिया	
2277	गीता-साधक-संजीवनी	450
	मराठी	
2271	श्रीमद्भवगद्गीता सचित्र श्लोकार्थसहित	250
	तेलुगु	
2287	श्रीललिताविष्णुसहस्रनाम-स्तोत्र मंजरी	40

कोड	पुस्तक-नाम	मू०₹
	नेपाली	
2273	अध्यात्मरामायण	150
2272	गीता-माहात्म्यसहित	70
	ENGLISH	
2283	Śrīmadbhagavadgītā (with Sanskrit Text and English Translation in four colour)	250

booksales@gitapress.org थोक पुस्तकोंसे सम्बन्धित सन्देश भेजें।
gitapress.org सूची-पत्र एवं पुस्तकोंका विवरण पढ़ें।
कूरियर/डाकसे मँगवानेके लिये गीताप्रेस, गोरखपुर—273005
book.gitapress.org/gitapressbookshop.in

If not delivered; please return to Gita Press, Gorakhpur—273005 (U.P.)